—भगवान् बुद्ध की चुनी हुई सूक्तियों का संग्रह—

वियोगी हरि

•

१९५९
सस्ता साहित्य मंडल, नई दिल्ली

प्रकाशक

मार्तण्ड उपाध्याय

मंत्री, सस्ता साहित्य मंडल,

नई दिल्ली

पांचवीं बार : १९५९

मूल्य

एक रुपया

मुद्रक

उद्योगशाला प्रेस,

दिल्ली—६

प्रकाशकीय

हमें हर्ष है कि 'बुद्ध-वाणी' का पांचवां संस्करण पाठकों के हाथों में पहुंच रहा है। बौद्ध साहित्य की ओर हिन्दी जगत की अभिरुचि बराबर बढ़ रही है और यही कारण है कि आज हिन्दी में बहुत-सा बौद्ध साहित्य उपलब्ध है। 'मण्डल' से ही कई पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं।

प्रस्तुत पुस्तक में भगवान बुद्ध की चुनी हुई सूक्तियों को विषयवार संकलित किया गया है, जिससे एक विषय की सारी सामग्री एक ही स्थान पर मिल जाती है।

यह संग्रह संत-साहित्य के मर्मज्ञ श्री वियोगी हरि ने किया है। संत-साहित्य उनका बहुत ही प्रिय विषय है और उसका उन्होंने अध्ययन ही नहीं किया, बल्कि उसे दैनिक चिंतन का अंग बना लिया है। बौद्ध साहित्य का विशद अध्ययन करके उन्होंने इस पुस्तक की मूल्यवान सामग्री को चुना है और उसे पाठकों के लिए सुलभ कराकर निश्चय ही उन्होंने लोकहित की दृष्टि से बहुत बड़ा काम किया है।

हम आशा करते हैं कि यह पुस्तक पहले से भी अधिक लोकप्रिय होगी।

—मंत्री

ग्रन्थ संकेत-निर्देश

म. न.	=	मज्झिम निकाय (राहुलसांकृत्यायन)
दी. नि.	=	दीर्घ निकाय
अं. नि.	=	अंगुत्तर निकाय
सं. नि.	=	संयुत्त निकाय
ध. प.	=	धम्मपद
सु. नि.	=	सुत्त निपात (धर्मानन्द कौसांबी—गुजराती संस्करण)
बु. च.	=	बुद्धचर्या (राहुल सांकृत्यायन)
बु. ली.	=	बुद्धलीला (धर्मानन्द कौसांबी—गुजराती संस्करण)
बु. दे.	=	बुद्धदेव (जगन्मोहन वर्मा)

प्रस्तावना

आचार्य काका कालेलकर ने एक जगह लिखा है कि "बुद्ध भगवान् की शिक्षा आज के युग के लिए विशेष रीति से अनुकूल है, विशेष रीति से पोषक है।" संसार में आज हरचीज का बड़ी बारीकी से विश्लेषण हो रहा है। विश्लेषण की करौटी पर जो चीज खरी नहीं उतरती, उसे अपनाने क्या, छूने तक में दुनिया अब आनाकानी करने लगी है। मानवता के मूल में ओत-प्रोत धर्म फिर इस व्यापक छानबीन से, इस बौद्धिक क्रांति से अछूता कैसे रह सकता था? संसार के छोटे-बड़े धर्म-मजहबों का भी इधर कुछ वर्षों से स्वतन्त्र दृष्टि से विश्लेषणात्मक अध्ययन होने लगा है। और इसीसे काका कालेलकर ने वर्तमान शताब्दी को 'धर्म-मंथन-काल' कहा है। आज इस धर्म-मंथन-काल में इलहाम का 'आर्डिनेंस' मानने को मनुष्य की आत्मा तैयार नहीं, यद्यपि कभी-कभी अन्ध-अश्रद्धावश आवेश में वह अविवेक का भी प्रदर्शन कर बैठती है। शुद्ध बौद्धिक कसौटी पर कसते समय यह देखा जाता है कि वह धर्म समभाव और समन्वय का कहांतक समर्थक है, वैषम्य और द्वेष की आग को यह उत्तेजन तो नहीं दे रहा है, और सर्वसाधारण का 'कल्याण' उसके द्वारा कहाँतक सम्पादित होता है। किन्तु इस धर्मतुला को मैं एकदम नई कसौटी कहने के पक्ष में नहीं हूं। धर्म की यह तराजू उतनी ही प्राचीन है, जितनी प्राचीन हमारी प्रज्ञा है। कई सदियों तक हमारे अधर्म-मूलक दुराग्रह ने इस अनमोल चीज को ओझल जरूर कर रखा था और कुछ अंशों में आज भी कर रखा है, पर जगत् के क्रांतदर्शी संतों और महापुरुषों ने अपना शोधन-कार्य तो सदा जारी ही रखा। समय-समय पर उन्होंने मनुष्य की बुद्धि पर पड़ा हुआ वह विभेदक पर्दा उठाया और उससे कहा कि "देख, धर्म का सच्चा सनातन रूप यह है, एप धर्मः सनातनः।" भगवान् बुद्ध ने तो अत्यन्त स्पष्ट शब्दों में कह दिया

था कि "आओ, और अपनी 'प्रज्ञा की आंख से' धर्म को देखो—एहि पश्कय धर्म !" यही कारण है कि बुद्ध भगवान् की शिक्षा आज के युग के लिए विशेष रीति से अनुकूल है और विशेष रीति से पोषक है।

जहां अन्य धर्मों ने पात्र में रखी जानेवाली 'वस्तु' के विवेचन में अपने दार्शनिक ज्ञान की सारी पूंजी खर्च कर डाली है, वहां बौद्धधर्म में पात्र की सम्यक् शुद्धि पर ही सबसे अधिक जोर दिया गया है और यही इस मानव-धर्म की सबसे बडी विशेषता है। और इसीसे आस्तिक और नास्तिक दोनों ही इस कल्याणमूलक धर्म में समान समाधान पाते हैं। कोई विवाद नही, कोई कलह नहीं। अष्टांगिकमार्गी या अन्तःशुद्धि का साधक द्वेषमूलक वादविवाद से अलग ही रहेगा। मैत्री, मुदिता, उपेक्षा और करुणा के शीतल जल में जिस मनुष्य ने अपना रोम-रोम भिगो लिया है, वह विवाद, द्वेष, परिग्रह और कलह की कभी कल्पना भी नहीं कर सकता। वह किसके साथ तो राग करे और किसके साथ द्वेष ?

यह सही है कि रूढ़िप्रिय मनुष्य की अतड़ियों के घातक फोडे में बुद्ध भगवान् ने नश्तर लगाया था और उससे वह एक बार क्रुद्ध हो चीख उठा था। पर वहां भी भगवान् की असीम करुणा को शल्याबद्ध मनुष्य के अन्तर की पीडा हरनी थी, उसका सारा सडा मवाद निकालना था, उसका हृदयघट शुद्ध करना था। रोगी के प्रलाप और अभिशाप से भगवान् डर जाते, तो उसे 'ब्रह्म-विहार' का आनन्दलाभ कैसे होता ? पीछे, जब आंखें खुलीं, तो अपने महाकारुणिक चिकित्सक को उसने जगत् का उद्धारक ही नहीं, ईश्वर का अवतार तक माना और उसकी श्रद्धावनत अन्तरात्मा से बरबस ये शब्द निकल पड़े।

बुद्धं शरणं गच्छामि;
धम्मं शरणं गच्छामि;
संघं शरणं गच्छामि।

समय के फेर से बौद्धधर्म आज अपनी जन्मभूमि भारत में प्रत्यक्ष नहीं दिखाई देता, पर यह नहीं कहा जा सकता कि उसका सर्वथा लोप होगया है। हमारे राष्ट्रपर, हमारे जीवन पर आज भी उस महान् मानव-धर्म की अमिट छाप लगी हुई है। भले ही हम अपनेको प्रत्यक्ष में बौद्ध न कहें, पर बौद्धधर्म का प्रेरणाप्रद प्रभाव हम भरतवासियों के जीवन में परोक्षत. कुछ-न-कुछ काम तो कर ही रहा है। प्रयाग में आज तीसरी नदी का प्रत्यक्ष दर्शन कहां होता है, पर त्रिवेणी के एक-एक कण का महत्व और अस्तित्व उस लुप्तधारा सरस्वती की ही बदौलत बना हुआ है।

पर इस तरह आत्म-संतोष कर लेने से काम नहीं चलेगा। भगवान् बुद्ध का हमारे ऊपर बहुत बड़ा ऋण है। बौद्ध-वाङ्मय के प्रति हमारी यह उदासीनता सचमुच अक्षम्य है। हमारी राष्ट्रभाषा का बौद्ध-साहित्य के प्रकाशन में तीसरा नम्बर आता है। यह हमारे लिए भारी लज्जा और दुःख का विषय नहीं तो क्या है? बंगभाषा का बौद्ध-साहित्य के प्रकाशन में प्रथम स्थान है। उसके बाद स्यात् मराठी का नंबर है। मराठी में आचार्य धर्मानंद कौसाम्बी ने बडी योग्यता और विद्वतापूर्वक अनेक पाली ग्रंथों का अत्यन्त सुन्दर अनुवाद किया है। कौसाम्बी के कुछ बौद्ध-ग्रंथों का गुजराती भाषान्तर भी प्रकाशित हो चुका है। हिन्दी में तो दो-तीन साल पहले, सिवा चार-पांच बुद्ध-जीवनियों और धम्मपद के तीन-चार अनुवादों के, कुछ था ही नहीं। इधर बेशक इस दिशा में हिन्दी ने अच्छी प्रगति की है। महापंडित त्रिपिटकाचार्य श्री राहुल सांकृत्यायन ने समस्त 'त्रिपिटक' (सुत्तपिटक, विनयपिटक और अभिधम्मपिटक) का हिन्दी-अनुवाद करने का निश्चय किया है। 'मज्झिम-निकाय' का अनुवाद तो प्रकाशित भी होगया है। श्री सांकृत्यायनजी द्वारा संपादित आचार्य वसु-बंधुरचित 'अभिधर्मकोश' भी प्रकाशित हो चुका है। यदि यही क्रम जारी रहा तो श्री सांकृत्यायनजी के कथनानुसार मूल बौद्ध-साहित्य के अनुवाद में हिन्दी का स्थान भारतीय भाषाओं में ही प्रथम नहीं हो

जायगा, बल्कि हमारी मातृभाषा यूरोपीय भाषाओं से टक्कर लेने लगेगी।

अब दो शब्द प्रस्तुत पुस्तक पर। धम्मपद का मैं एक जमाने से भक्त हूं। इधर श्री धर्मानंद कौसाम्बी और श्री राहुल सांकृत्यायन के अनुवादित ग्रन्थ देखकर तो मैं 'कुसलस्स उपसंपदा'—वाले बुद्ध शासन पर मुग्ध होगया हूं। 'सुत्तनिपात' दो बार पूरा पढ़ा, तो भी तृप्ति नहीं हुई। पुस्तक पढ़ते समय अपने अत्यंत प्रिय स्थलों पर निशान लगाने की मेरी पुरानी आदत है। पढते-पढते मुझे सूझा कि भगवान् बुद्ध की सूक्तियों का लगेहाथों एक छोटा-सा विषयवार संग्रह क्यों न कर डाला जाय? मित्रों में चर्चा की तो उन्होंने मुझे प्रोत्साहन दिया। उसी इच्छा और प्रोत्साहन का परिणाम यह 'बुद्ध-वाणी' नामक सूक्ति-संग्रह है।

आरंभ में आर्य-सत्य-चतुष्टय, अष्टांगिक मार्ग, स्मृत्युपस्थान आदि बौद्धधर्म के मूल विषय कदाचित पाठकों को ऊपर से कुछ नीरस-से लगें, पर थोड़ा मनोयोगपूर्वक पढेंगे, तो इन दार्शनिक सूक्तियों में उन्हें आत्म-तृप्तिकर आनंद-रस मिले बिना न रहेगा। अंत में 'सूक्तिकण' एक खंड दिया है, जिसमें विविध विषयों की सूक्तियों का संग्रह किया गया है। पाठकों से मेरा आग्रह है कि सूक्तिकण को वे अवश्य आद्योपांत पढ़ें।

कौन सूक्ति किस ग्रंथसे ली गई है, इसका निर्देश मैंने प्रत्येक सूक्ति-संग्रह-विभाग के अन्त में कर दिया है। पुस्तक के अंत में बौद्ध-साहित्य में प्रयुक्त खास-खास पारिभाषिक शब्दों का एक संक्षिप्त कोश भी दे दिया है।

'बुद्ध-वाणी' ने लोगों के हृदय में यदि बौद्ध-वाङ्मय के निर्मल सरोवर में अवगाहन करने की थोड़ी भी लालसा जगाई, तो मैं अपना यह तुच्छ प्रयास सफल समझूंगा।

—वियोगी हरि

विषय-निर्देश

बुद्ध-वाणी

: १ :

बुद्ध-शासन

१. सारे पापो का न करना, 'कुशल धर्मों', अर्थात् पुण्यों का संचय करना और अपना चित्त परिशुद्ध रखना—यही बुद्धो की शिक्षा है।

... ..

२ **बुद्धों की यह शिक्षा है :**

(१) निदा न करना ;
(२) हिसा न करना ;
(३) आचार-नियम द्वारा अपनेको सयत रखना ;
(४) मित भोजन करना ;
(५) एकान्त में वास करना ;
(६) चित्त को योग मे लगाना ।

---

१. सब्ब पापस्स अकरणं कुसलस्स उपसंपदा ।
सचित्तपरियोदपनं, एतं बुद्धानसासनम् ॥
२. अनूपवादो, अनूपघातो, पातिमोक्खे च संवरो;
मत्तञ्ञुता च भत्तस्मिं पंतञ्च सयनासनं ।
अधिचित्ते च आयोगो एतं बुद्धानसासनं ॥
१—२. ध. प. (बुद्धवग्गो)

: २ :

महामंगल

१. मूर्खों के सहवास से दूर रहना, सत्पंडितों का सत्संग करना और पूज्य जनों को पूजना ही उत्तम मंगल है।

२ अनुकूल प्रदेश का वास, पूर्वजन्म के पुण्य और सन्मार्ग में मन की दृढ़ता—यही उत्तम मंगल है।

३. विद्या और कला का संपादन, सद्व्यवहार का अभ्यास तथा सुभाषण—यही उत्तम मंगल है।

४. माता-पिता की सेवा, स्त्री-पुत्रादि की संभाल और व्यवस्थित रीति से किये हुए कर्म—यही उत्तम मंगल है।

५. आदर, नम्रता, संतुष्टि, कृतज्ञता और समय-समय पर सद्धर्म का सुनना—यही उत्तम मंगल है।

६. क्षमा, मधुर भाषण, संतों का सत्संग और समय-समय पर धर्म-चर्चा—यही उत्तम मंगल है।

७. तप, ब्रह्मचर्य, आर्य सत्यों का[1] ज्ञान तथा निर्वाणपद का साक्षात्कार—यही उत्तम मंगल है।

---

[1] दुःख, दुःख-समुदाय, दुःख-निरोध, दुःख-निरोध का मार्ग इन चार सत्यों को भगवान् बुद्ध ने 'आर्यसत्य-चतुष्टय' कहा है।

१—८ सु नि (महामंगल सुत्त)

: ३ :

आर्यसत्य-चतुष्टय

१ पहला आर्यसत्य दुःख है। जन्म दुःख है, जरा दुःख है, व्याधि दुःख है, मृत्यु दुःख है, अप्रिय का मिलना दुःख है, प्रिय का बिछुडना दुःख है, इच्छित वस्तु का न मिलना दुःख है। संक्षेप में, रूप, वेदना, सज्ञा सस्कार और विज्ञान, यह पंचोपादान स्कध (समुदाय) ही दुःख है।

२. **दुःखसमुदाय** नाम का दूसरा आर्यसत्य, यह तृष्णा है जो पुनुर्भवादि दुःख का मूल कारण है। यह तृष्णा राग के साथ उत्पन्न हुई है। सासारिक उपभोगो की तृष्णा, स्वर्गलोक मे जाने की तृष्णा और आत्महत्या करके ससार से लुप्त हो जाने की तृष्णा, इन तीन तृष्णाओ से मनुष्य अनेक तरह का पापाचरण करता है और दुःख भोगता है।

३. तीसरा आर्यसत्य **दुःखनिरोध** है। यह प्रतिसर्गमुक्त और अनालय है। तृष्णा का निरोध करने से निर्वाण की प्राप्ति होती है, देहदंड या कामोपभोग से मोक्षलाभ होने का नहीं।

४. चौथा आर्यसत्य **दुःखनिरोधगामिनी प्रतिपदा** है। इसी आर्यसत्य को **अष्टांगिक मार्ग** कहते हैं। वे अष्टाग ये हैं :

(१) सम्यक् दृष्टि, (२) सम्यक् संकल्प, (३) सम्यक् वचन, (४) सम्यक् कर्मांत, (५) सम्यक् आजीव, (६) सम्यक् व्यायाम, (७) सम्यक् स्मृति, (८) सम्यक् समाधि।

दुःख का निरोध इसी मार्ग पर चलने से होता है।

५. **दुःख** नामक पहला आर्यसत्य पूर्व समय में कभी नही सुना गया था। यह दुःख नामक आर्यसत्य **परिज्ञेय** है।

६. **दुःखसमुदाय** नाम का दूसरा आर्यसत्य पूर्व समय में कभी नहीं सुना गया था। यह दुःखसमुदाय नाम का आर्यसत्य **त्याज्य** है।

७. दु खनिरोध नाम का तीसरा आर्यसत्य पूर्व समय मे कभी नही सुना गया था। यह दुःखनिरोध नाम का आर्यसत्य साक्षात्करणीय कर्त्तव्य है।

८. दुःख-निरोधगामिनी प्रतिपदा नाम का चोथा आर्यसत्य पूर्व समय मे नहीं सुना गया था। यह दुःखनिरोधगामिनी प्रतिपदा नामक आर्यसत्य भावना करने योग्य है।

९. इस 'आर्यसत्य चतुष्टय' से मेरे अन्तर में चक्षु, ज्ञान, प्रज्ञा, विद्या और आलोक की उत्पत्ति हुई।

१० जबसे मुझे इन चारो आर्यसत्यो का यथार्थ सुविशुद्ध ज्ञानदर्शन हुआ, मैने देवलोक में, मारलोक मे, श्रवणजगत् और ब्राह्मणीयप्रजा मे, देवां और मनुष्यो में यह प्रकट किया कि मुझे अनुत्तर सम्यक् सम्बोधि[1] प्राप्त हुई और मै अभिसंबुद्ध हुआ, मेरा चित्त निर्विकार और विमुक्त होगया और यह अब मेरा अन्तिम जन्म है।

११ परिव्राजक को इन दो अन्तों (अतिसीमा) का सेवन नही करना चाहिए। वे दोनां अन्त कोन हैं? पहला अन्त है काम-वासनाओं में कामसुख के लिए लिप्त होना। यह अन्त अत्यन्त हीन, ग्राम्य, निकृष्ट जनो के योग्य, अनार्य्य और अनर्थकारी है। दूसरा अन्त है शरीर को दंड देकर दुःख उठाना। यह भी अनार्यसेवित और अनर्थयुक्त है। इन दोनो अंतो को त्यागकर मध्यमा प्रतिपदा का मार्ग (अष्टागिक मार्ग) ग्रहण करना चाहिए। यह मध्यमा प्रतिपदा चक्षुदायिनी और ज्ञानप्रदायिनी है। इससे उपशम, अभिज्ञान, सबोधन और निर्वाण प्राप्त होता है।

---

[1]परमज्ञान, मोक्षज्ञान

१—११. बु. च (धर्मचक्रप्रवर्त्तन सूत्र)

: ४ :

अष्टांगिक मार्ग

१. सम्यक् दृष्टि, सम्यक् संकल्प, सम्यक् वचन, सम्यक् कर्मांत, सम्यक् आजीव, सम्यक् व्यायाम, सम्यक् स्मृति और सम्यक् समाधि—ये आर्य अष्टांगिक मार्ग है।

२. **सम्यक् दृष्टि**—दुःख का ज्ञान, दुःखोदय का ज्ञान, दुःख-निरोध का ज्ञान और दुःख-निरोध की ओर ले जानेवाले मार्ग का ज्ञान, इस आर्यसत्य-चतुष्टय के सम्यक् ज्ञान को सम्यक् दृष्टि कहते हैं।

३ **सम्यक् संकल्प**—निष्कर्मता-संबंधी, अर्थात् अनासक्ति-संबंधी संकल्प, अहिंसा-संबंधी संकल्प और अद्रोह-संबंधी संकल्प को सम्यक् संकल्प कहते हैं।

४. **सम्यक् वचन**—असत्य वचन छोड़ना, पिशुन वचन अर्थात् चुगलखोरी छोड़ना, कठोर वचन छोड़ना और बकवाद छोड़ना सम्यक् वचन है।

५. **सम्यक् कर्मांत**—प्राणिहिंसा से विरत होना, बिना दी हुई वस्तु न लेना और कामोपभोग के मिथ्याचार (दुराचार) से विरत होना ही सम्यक् कर्मांत है।

६. **सम्यक् आजीव**—आजीविका के मिथ्या साधनों को छोड़कर अच्छी सच्ची आजीविका से जीवन व्यतीत करना सम्यक् आजीव है।

७. **सम्यक् व्यायाम**—'अकुशल' धर्म, अर्थात् पाप उत्पन्न न होने देने के लिए निश्चय करना, परिश्रम करना, उद्योग करना, चित्त को पकड़ना और रोकना तथा कुशल धर्म, अर्थात् सत्कर्म की उत्पत्ति, स्थिति, विपुलता और परिपूर्णता के लिए निश्चय, उद्योग आदि करना ही सम्यक् व्यायाम है।

८. **सम्यक् स्मृति**—अशुचि, जरा, मृत्यु आदि दैहिक धर्मो का अनुभव करना तथा उद्योगशील अनुभवज्ञानयुक्त हो लोभ और मानसिक संताप को छोडकर जगत् मे विचरना ही सम्यक् स्मृति है।

९. **सम्यक् समाधि**—कुशल धर्मों अर्थात् सन्मनोवृत्तियो मे समाधान रखना ही सम्यक् समाधि है।

१०. इस सम्यक् समाधि की प्रथम, द्वितीय, तृतीय और ध्यानरूपी चार सीढ़िया हैं।

पहले ध्यान मे वितर्क, विचार, प्रीति (प्रमोद) सुख और एकाग्रता होते है।

दूसरे ध्यान मे वितर्क और विचार का लोप हो जाता है; प्रीति, सुख और एकाग्रता ये तीन मनोवृत्तिया ही रहती हैं।

तीसरे ध्यान में प्रीति का लय हो जाता है; केवल सुख और एकाग्रता ही रहती है।

चौथे ध्यान में सुख भी लुप्त हो जाता है; उपेक्षा और एकाग्रता ही रहती है।

११. अमृत की ओर ले जानेवाले मार्गों में अष्टागिक मार्ग परम **मंगलमय मार्ग है**।

१२. दुःख आर्यसत्य, दुःख-समुदाय आर्यसत्य, दुःखनिरोध आर्यसत्य और दुःखनिरोधगामीमार्ग आर्यसत्य, इन चार आर्यसत्यो का ज्ञान न होने से युगानुयुगो तक हम सब लोग संसृति के पाश में बंधे पड़े थे। किंतु अब इन आर्यसत्यो का बोध होने से हमने दुःख की जड खोद निकाली है और हमारा पुनर्जन्म से छुटकारा होगया है।

१—१०. दी. नि. (महासतिपट्ठान सुत्त) ११. म. नि. (मागंदिय सुत्तन्त) ११ दी नि. (महापरिनिब्बाण सुत्त)

: ५ :

जागृति के चार साधन

(चार स्मृत्युपस्थान)

१. शुद्ध होने के लिए, शोक और दुःख से तरने के लिए, दौर्मनस्य (मानसिक दुःख) का नाश करने के लिए, सन्मार्ग प्राप्त करने के लिए और निर्वाणपद का साक्षात् करने के लिए चार स्मृति-उपस्थानो का मार्ग ही एकमात्र सच्चा मार्ग है।

२. चार स्मृति-उपस्थान ये हैं—

(१) अपनी देह का यथार्थ रीति से अवलोकन करना;

(२) वेदना का[1] यथार्थ रीति से अवलोकन करना;

(३) चित्त का यथार्थ रीति से अवलोकन करना;

(४) मनोवृत्तियों का यथार्थ रीति से अवलोकन करना।

ये चार स्मृति-उपस्थान अर्थात् जागृति के श्रेष्ठ साधन हैं।

३. अरण्य में वृक्ष के नीचे अथवा एकात में पालथी मारकर गर्दन से कमर तक शरीर सीधा रखकर भिक्षु जागरूक रहकर श्वास खींचता है और प्रश्वास बाहर निकलता है, उसका आश्वास और प्रश्वास दीर्घ है या ह्रस्व, इसकी उसे पूर्ण स्मृति होती है, जागृतिपूर्वक वह अपने प्रत्येक आश्वास-प्रश्वास का अभ्यास करता है।

जिस प्रकार वह आश्वास और प्रश्वास को सम्यक् रीति से जानता है, उसी प्रकार वह अपनी देह का यथार्थ रीति से अवलोकन करता है।

---

१ इंद्रिय और विषय के एक साथ मिलने के बाद जो दुःख-सुख आदि अनुभव होता है।

४. चलते समय वह यह स्मरण रखता है कि 'मै चल रहा हूं' 'खड़ा होता है तो 'मै खड़ा होता हू' यह स्मरण रखता है, जब बैठा होता है तब यह स्मरण रखता है कि 'मै बैठा हू'; लेटा होता है तो 'मै लेटा हू' यह स्मरण रखता है। उसे देह की समस्त क्रियाओं का ज्ञान होता है।

इस तरह वह अपनी देह का यथार्थ रीति से अवलोकन करता है।

५. वह अपनी देह का नख से शिखा तक अवलोकन करता है। केश, रोम, नख, दात, त्वचा, मास, स्नायु, अस्थि, मज्जा, मूत्राशय कलेजा, यकृत, तिल्ली, फेफड़े, आत, अतड़िया, विष्ठा, पित्त, कफ, पीब, रक्त, पसीना, मेद, आसू, चरबी, थूक, लार और मूत्र ऐसी-ऐसी अपवित्र चीजे इस देह में भरी हुई हैं !

कायानुपश्यी योगी अपनी देह मे भरे हुए इन तमाम अपवित्र पदार्थो का उसी प्रकार एक-एक करके अवलोकन करता है जिस प्रकार कि हम विविध अनाजों की पोटली को खोलकर देख सकते हैं कि इसमें यह चावल है, यह मूंग है, यह उड़द है, यह तिल है और यह धान है।

६. वह कायानुपश्यी भिक्षु मरघट मे जाकर अनेक तरह के मुर्दों को देखता है। कोई मुर्दा सूजकर मोटा हो गया है, किसी मुर्दे को कौओं, कुत्तों और सियारों ने खाकर और नोच-नोचकर छिन्न-भिन्न कर डाला है, तो किसीकी केवल शंख-सी सफेद हड्डिया ही पड़ी हुई हैं। ऐसे भयावने मुर्दों की तरफ देखकर वह यह विचार करता है कि 'मेरी देह की भी एक दिन यही गति होनी है। यह हो नहीं सकता कि मेरी देह इस नश्वर स्थिति से मुक्त हो जाय।'

वह यह स्मरण रखता है कि यह देह जब पैदा हुई है तब एक-न-एक दिन तो इसका नाश होगा ही। देह नाशवान् है, इसका उसे हमेशा स्मरण रहता है।

वह अनासक्त हो जाता है। दुनिया में किसी भी वस्तु की उसे आसक्ति नहीं रहती।

इस प्रकार वह अपनी देह का यथार्थ रीति से अवलोकन करता है।

७. कोई भिक्षु अपनी वेदनाओं का यथार्थ रीति से अवलोकन करता है। जब वह सुखकारी वेदना का अनुभव करता है, तो वह समझता है कि मै सुखद वेदना का अनुभव कर रहा हू।

और जब दुःखकारी वेदना का अनुभव करता है, तब वह समझता है कि दुःखद वेदना का अनुभव कर रहा हू।

जब वह सुख-दुःख-रहित वेदना का अनुभव करता है, तब वह समझता है कि मै सुख-दुःख-रहित वेदना का अनुभव कर रहा हू।

उसे इस बात का स्मरण रहता है कि वह इस वेदना का लोभ से अनुभव कर रहा है या अलोभ से।

इस प्रकार वह आन्तरिक और बाह्य वेदना का यथार्थ रीति से अवलोकन करता है। वह देखता है कि वेदना जब पैदा हुई है तब उसका नाश अवश्य होगा।

उसे यह स्मरण रहता है कि उसके शरीर में वेदना है।

स्मृति और ज्ञान प्राप्त करने के लिए वह वेदनानुपश्यी योगी अनासक्त हो जाता है। इस लोक की किसी भी वस्तु में वह आसक्ति नहीं रखता।

८. कोई भिक्षु अपने चित्त का यथार्थ रीति से अवलोकन करता है। मेरा चित्त सकाम है या निष्काम, सद्वेष है या विगतद्वेष, समोह है या वीतमोह, संक्षिप्त है या विक्षिप्त, समाहित (एकाग्र) है या असमाहित, विमुक्त है या अविमुक्त, आदि सभी अवस्थाओं को वह जानता है। इस प्रकार वह अपने और पराये चित्त का अवलोकन करता है।

वह जानता है कि चित्त का स्वभाव चंचल है।

इस प्रकार वह चित्तानुपश्यी भिक्षु चित्त का यथार्थ रीति से अवलोकन करता है।

९. कोई भिक्षु अपनी मनोवृत्तियों का यथार्थ रीति से अवलोकन करता है। वह इस बात की ठीक-ठीक शोध करता है कि उसके अन्तःकरण में कामविकार, द्वेष-बुद्धि, आलस्य, अस्वस्थता और संयम, ये ज्ञान के पांच

आवरण हैं या नहीं।

इन आवरणों की उत्पत्ति कैसे होती है, इनके उत्पन्न होने पर इनका विनाश किस तरह होता है और इनके फिर से उत्पन्न न होने का क्या उपाय है, इस सबको वह जानता है।

इस प्रकार इन पाच मनोवृत्तियों का वह यथार्थ रीति से अवलोकन करता है।

१० फिर वह पाच स्कधों का यथार्थरीति से अवलोकन करता है। रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार और विज्ञान, इन पाच स्कधों का उदय और अस्त कैसे होता है, यह वह जानता है।

इस प्रकार वह धर्मानुपश्यी भिक्षु आभ्यंतर और बाह्य स्कधों का यथार्थ रीति से अवलोकन करता है।

११ फिर वह चक्षु, रूप इत्यादि आध्यात्मिक और बाह्य आयतनों का यथार्थ रीति से अवलोकन करता है। चक्षु और रूप, कर्ण और शब्द, नासा और गन्ध, त्वचा और स्पर्श, मन और मनोवृत्ति इनके संयोग से कौन-कौन-से सयोजन पैदा होते हैं, और उनके उत्पन्न होने पर उन संयोजनों का नाश कैसे होता है, और संयोजन फिर उत्पन्न न हों, इसका क्या उपाय है इस सबको वह जानता है।

१२ फिर वह सात बोध्यगों का यथार्थ रीति से अवलोकन करता है। स्मृति, धर्मप्रविचय (धर्मसंचय), वीर्य (उद्योग), प्रीति, प्रश्रब्धि (शान्ति), समाधि और उपेक्षा ये सात धर्म मेरे अतःकरण में हैं या नहीं, यह वह जानता है। यदि नहीं हैं तो ये सबोध्यंग किस प्रकार उत्पन्न किये जा सकते हैं, और उत्पन्न हुए संबोध्यंगों की भावना किस प्रकार पूरी होती है, यह सब वह जानता है।

इस प्रकार वह भिक्षु आध्यात्मिक और बाह्य मनोवृत्तियों का यथार्थ रीति से अवलोकन करता है।

१३. इसके अतिरिक्त वह भिक्षु चार आर्य-सत्यों का यथार्थ रीति से अवलोकन करता है।

यह दुःख है, यह दुःख का समुदाय है यह दुःख का निरोध है और यह दुःख-निरोध का मार्ग हैं, यह वह यथार्थ रीति से जानता है।

इस प्रकार वह भिक्षु अध्यात्मिक और बाह्य मनोवृत्तियो का यथार्थ रीति से अवलोकन करता है।

१४. इन चार स्मृति-उपस्थानो की ऊपर कहे अनुसार सात वर्ष तक भावना करने से भिक्षु को 'अर्हत्पद' की प्राप्ति हो जायगी। अधिक नहीं तो, वह 'अनागामी' तो हो ही जायगा, फिर इस लोक में जन्म नही लेना पड़ेगा।

१५. सात वर्ष जाने दो, ऊपर कहे अनुसार जो भिक्षु इन चार स्मृति-उपस्थानो की भावना छह वर्ष, पाँच वर्ष, चार वर्ष, तीन वर्ष, दो वर्ष, एक वर्ष, इतना भी नही, तो सात मास, छह मास, पाच मास, चार मास, तीन मास, दो मास, एक मास, या सात ही दिन यथार्थ रीति से करेगा, तो उसे 'अर्हत्पद' की प्राप्ति हो जायगी—और नही तो वह 'अनागामी' तो हो ही जायगा।

१६. इन चार स्मृति-उपस्थानो का मार्ग शोक और कष्ट के उपशमन के लिए, दुःख और दौर्मनस्य के अतिक्रमण के लिए, ज्ञान की प्राप्ति के लिए और निर्वाण के साक्षात्कार के लिए ही एकमात्र मार्ग है।

१—१६. म. नि. (सतिपट्ठान सुत्त)

सप्त धर्मरत्न

१. धर्म के इन सात रत्नो को तुम लोग अवश्य धारण करो—(१) स्मृत्युपस्थान, (२) सम्यक् प्रधान (प्रयत्न) (३) ऋद्धिपाद, (३) इंद्रिय, (५) बल, (६) बोध्यग, और (७) मार्ग।

२. **स्मृत्युपस्थान** चार प्रकार का है—(१) शरीर के प्रति जागरूक रहना, (२) वेदनाओं के प्रति जागरूक रहना, (३) चित्त के प्रति जागरूक रहना, (४) धर्मों के प्रति जागरूक रहना। इन चारों के स्मरण और भावना को चतुर्विधि स्मृत्युपस्थान कहते हैं।

३. **सम्यक् प्रधान** चार प्रकार का है—(१) सद्गुणों का सरक्षण, (२) अलब्ध सद्गुण का उपार्जन, (३) दुर्गुणों का परित्याग और (४) नूतन दुर्गणों की अनुत्पत्ति का प्रयत्न।

४ **ऋद्धिपाद** अर्थात् असाधारण क्षमता की प्राप्ति के लिए (१) दृढ़ संकल्प, (२) चिता अथवा उद्योग, (३) उत्साह और (४) आत्मसयम करना।

५. **इंद्रियां** पाच हैं—(१) श्रद्धा, (२) समाधि, (३) वीर्य, (४) स्मृति और (५) प्रज्ञा।

६ **बल** भी पाच हैं—(१) श्रद्धाबल, (२) समाधिबल, (३) वीर्य-बल (४) स्मृतिबल और (५) प्रज्ञाबल।

७. **बोध्यंग** सात हैं—(१) स्मृति, (२) धर्मप्रविचय (धर्मान्वेषण) या पुण्य, (३) वीर्य, (४) प्रीति, (५) प्रश्रब्धि अर्थात् शान्ति, (६) समाधि और (७) उपेक्षा।

८ मार्ग आठ अंगोवाला है—(१) सम्यक् दृष्टि, (२) सम्यक् संकल्प (३) सम्यक् वचन, (४) सम्यक् कर्मान्त (५)सम्यक् आजीव, (६) सम्यक् व्यायाम, (७)सम्यक् स्मृति और (८) सम्यक् समाधि ।

९. इन सैंतीस पदार्थों को लेकर मैंने धर्म की व्यवस्था की है। इन्हें मैंने 'सप्तत्रिंशत् शिक्षमाण धर्म' कहा है ।

१—९. दी. नि. (महापरिनिब्बाण सुत्त)

ब्रह्म-विहार

१. मैत्री, करुणा, मुदिता और उपेक्षा—इन चार मनोवृत्तियों को 'ब्रह्म-विहार' कहते हैं।

२. मैत्रीपूर्ण चित्त से, करुणापूर्ण चित्त से, मुदितापूर्ण चित्त से और उपेक्षापूर्ण चित्त से जो भिक्षु चारो दिशाओं को व्याप्त कर देता है, सर्वत्र समस्त जगत् को अवैर अद्वेषमय चित्त से भर देता है उसे मैं 'ब्रह्म-प्राप्त' भिक्षु कहता हूं।

३. मैत्रीचित्तविमुक्ति की प्रेमपूर्वक इच्छा करने से, भावना करने से, अभिवृद्धि करने से, स्थापना करने से, उसका अनुष्ठान करने से, और उसे उत्साहपूर्वक अंगीकार करने से मनुष्य को ये ग्यारह लाभ होते हैं—

वह सुखपूर्वक सोता है; सुख से जागता है; बुरे स्वप्न नहीं देखता; सबका प्रिय होता है; भूत-पिशाचो का भय नहीं रहता; देवता उसकी रक्षा करते हैं; अग्नि, विष या हथियार उसपर कोई असर नहीं कर सकते; चित्त तुरन्त एकाग्र हो जाता है; मुख की कान्ति अच्छी रहती है; शांति से मरता है; और निर्वाण न भी मिले, तो भी मृत्यु के पश्चात् ब्रह्मलोक को तो जाता ही है!

४. भिक्षुओ, मैं जानकर ही जान-बूझकर किये गए कर्मों के अंत करने की बात कहता हू, वह इसी जन्म में हो अथवा भविष्य में हो। अतः आर्यश्रावक (गृहस्थ) लोभ से, द्वेष से और मोह से विमुक्त होकर सचेत अतःकरण के द्वारा मैत्रीयुक्त चित्त से, करुणायुक्त चित्त से, मुदितायुक्त चित्त से और उपेक्षायुक्त चित्त से चारों दिशाओं को अभिव्याप्त कर देता है; अखिल जगत को अवैर और द्वेषरहित मैत्रीसहगत चित्त से अभिव्याप्त कर देता है।

वह समझता है कि पूर्व में इन भावनाओं के न करने से मेरा चित्त संकुचित था। पर अब उत्तम रीति से इस मैत्री-भावना, इस करुणा-भावना, इस मुदिता-भावना और इस उपेक्षा-भावना के करने से वह असीम और अनंत हो गया है। जो भी मर्यादित कर्म मेरे हाथ से हुआ होगा, वह अब इन अमर्यादित भावनाओं के कारण शेष नहीं रह सकता, वह इन भावनाओं के सामने टिक नहीं सकता।

५. मनुष्य यदि छुटपन से ही मैत्री, करुणा, मुदिता और उपेक्षा-चित्तविमुक्ति की भावना करे, तो उसके हाथ से पापकर्म होगा ही क्यों? और वह पाप नहीं करेगा, तो फिर उसे दुःख क्यों भोगना पड़ेगा?

६. यह मैत्री, करुणा, मुदिता और उपेक्षाचित्तविमुक्ति की भावना क्या पुरुष, क्या स्त्री, सभीको करनी चाहिए।

१—२ अं.नि. (चतुक्कनिपात) ३ अं.नि. (मेत्तसुत्त) ४—६. अं.नि. (दसक निपातः करज काय वग्गो)

: ८ :

सत्य

१. असत्यवादी नरकगामी होते हैं. और वे भी नरक में जाते हैं, जो करके 'नहीं किया' कहते हैं।

२. जो मिथ्याभाषी है, वह मुण्डित होनेमात्र से श्रमण नहीं हो जाता।

●

३. जिसे जान-बूझकर झूठ बोलने में लज्जा नही, उसका साधुपना औंधे घडे के समान है; साधुता की एक बुंद भी उसके हृदय-घट के अन्दर नहीं।

४. जिसे जान-बूझकर झूठ बोलने में लज्जा नही, वह कोई भी पाप कर सकता है। इसलिए तू यह हृदय में अंकित कर ले, कि मैं हँसी-मजाक में भी कभी असत्य नही बोलूगा।

५. जितनी हानि शत्रु शत्रु की और वैरी वैरी की करता है, मिथ्या मार्ग का अनुगमन करनेवाला चित्त उससे कहीं अधिक हानि पहुचाता है।

●

६. सभा मे, परिषद् में अथवा एकात में किसीसे झूठ न बोले; झूठ बोलने के लिए दूसरों को प्रेरित न करे, न झूठ बोलनेवाले को प्रोत्साहन दे—असत्य का सर्वांश में परित्याग कर देना चाहिए।

●

७. अगर कोई हमारे विरुद्ध झूठी गवाही देता है, तो उससे हमें अपना भारी नुकसान हुआ मालूम होता है। इसी तरह अगर असत्य-भाषण से मै दूसरो की हानि करू, तो क्या वह उसे अच्छा लगेगा? ऐसा विचार करके मनुष्य को असत्य-भाषण का परित्याग कर देना चाहिए, और

दूसरों को भी सत्य बोलने का उपदेश करना चाहिए। सदा ईमानदारी की ही सराहना करनी चाहिए।

●

८. असत्य का कदापि आश्रय न ले। न्यायाधीश ने गवाही देने के लिए बुलाया हो तो वहा भी जो देखा है, उसीको कहे, कि 'मैंने देखा है' और जो बात नही देखी, उसे 'नही देखी' ही कहे।

●

९. सत्यवाणी ही अमृतवाणी है; सत्यवाणी ही सनातनधर्म है। सत्य, सदर्थ और सद्धर्म पर सतजन सदैव दृढ रहते हैं।

●

१०. सत्य एक ही है, दूसरा नही। सत्य के लिए बुद्धिमान लोग विवाद नही करते।

११. ये लोग भी कैसे हैं! साम्प्रदायिक मतों में पड़कर अनेक तरह की दलीलें पेश करते हैं, और सत्य और असत्य दोनो का ही प्रतिपादन कर देते हैं! अरे, सत्य तो जगत् में एक ही है, अनेक नहीं।

१२. जो मुनि है, वह केवल सत्य को ही पकडकर और दूसरी सब वस्तुओं को छोड़कर संसार-सागर के तीर पर आ जाता है। उसी सत्यनिष्ठ मुनि को हम शात कहते हैं।

१—२. ध. प. (निरय वग्गो) ३—४. बु. च. (राहुलोवाद सुत्त) ५. ध. प. (चित्त वग्गो) ६. सु. नि. (धम्मिक सुत्त) ७. बु. ली. सं. (पृष्ठ २५५) ८. म. नि. (सालेयक सुत्त) ९. सु. नि. (सुभासित सुत्त) १०—११. सु. नि. (चूलवियूह सुत्त) १२. सु. नि. (अत्तदंड सुत्त)

: ६ :

अहिंसा

१. 'जैसा मैं हूं, वैसे ही वे हैं और जैसे वे हैं, वैसा ही मैं हूं' इस प्रकार सबको अपने जैसा समझकर न किसीको मारे, न मारने को प्रेरित करे।

●

२. जहां मन हिंसा से मुड़ता है, वहां दुःख अवश्य ही शान्त हो जाता है।

●

३. अपनी प्राण-रक्षा के लिए भी जान-बूझकर किसी प्राणी का वध न करे।

●

४. मनुष्य यह विचार किया करता है कि मुझे जीने की इच्छा है, मरने की नहीं; सुख की इच्छा है, दुःख की नहीं। यदि मैं अपनी ही तरह सुख की इच्छा करनेवाले प्राणी को मार डालूं, तो क्या यह बात उसे अच्छी लगेगी? इसलिए मनुष्य को प्राणिघात से स्वयं तो विरत हो ही जाना चाहिए, उसे दूसरों को भी हिंसा से विरत कराने का प्रयत्न करना चाहिए।

५. वैरियों के प्रति वैररहित होकर, अहा! हम कैसा आनन्दमय जीवन बिता रहे हैं, वैरी मनुष्यों के बीच अवैरी होकर विहार कर रहे हैं।

६. पहले तीन ही रोग थे—इच्छा, क्षुधा और बुढ़ापा। पशु की हिंसा से बढ़ते-बढ़ते वे अट्ठानवे हो गये।

ये याजक, ये पुरोहित निर्दोष पशुओं का वध कराते हैं, धर्म का ध्वंस

करते है। यज्ञ के नाम पर की गई यह पशुर्हिसा निश्चय ही निंदित और नीच कर्म है। प्राचीन पंडितो ने ऐसे याजको की निंदा ही की है।

७. पहले के ब्राह्मण यज्ञ में गाय का हनन नहीं करते थे। जैसे माता, पिता, भ्राता और दूसरे बंधु-बांधव, वैसे ही ये गायें हमारी परम मित्र हैं। ये अन्न, बल, वर्ण और सुख देनेवाली हैं।

८. किन्तु मानुष भोगो को देखकर कालांतर मे ये ब्राह्मण भी लोभ-ग्रस्त हो गये, उनकी भी नीयत बदल गई। मंत्रो को रच-रचकर वे इक्ष्वाकु (ओक्काक) राजा के पास पहुचे और उसके धनैश्वर्य की प्रशंसा करके उसे पशु-यज्ञ करने के लिए प्रेरित किया। उन्होंने उससे कहा, "जैसे पानी, पृथिवी, धन और धान्य प्राणियो के उपभोग की वस्तुए है, उसी प्रकार ये गायें भी मनुष्यो के लिए उपभोग्य हैं। अतः तू यज्ञ कर।"

९. तब उन ब्राह्मणो से प्रेरित होकर रथर्षभ राजा ने लाखो निरपराध गायो का यज्ञ मे हनन किया। जो बेचारी न पैर से मारती है, न सींग से, जो भेड की नाईं सीधी और प्यारी है, और जो घडा भर दूध देती हैं, उनके सींग पकडकर राजा ने शस्त्र से उनका वध किया।

१०. यह देखकर देव, पितर, इन्द्र, असुर और राक्षस चिल्ला उठे-'अधर्म हुआ, अधर्म हुआ, जो गाय के ऊपर शस्त्र गिरा!'

१ सु. नि. (नालक सुत्त) २. ध. प. (ब्राह्मण वग्गो) ३. बु. च. (सीह सुत्त) ४. बु. ली. सं (पृष्ठ २९५) ५. ध. प. (सुख वग्गो) ६—१०. बु. च. (ब्राह्मण धम्मिक सुत्त)

: १० :

अमृत की खेती

१. मै भी कृषक हू । मेरे पास श्रद्धा का बीज है । उसपर तपश्चर्या की वृष्टि होती है ।

प्रज्ञा मेरा हल है । ह्री (पाप करने में लज्जा) की हरिस, मन की जोत और स्मृति की फाल से मै अपना खेत (जीवन-क्षेत्र) जोतता हू ।

सत्य ही मेरा खुरपा है । मेरा उत्साह ही मेरा बैल है और यह योग-क्षेम मेरा अधिवाहन है । इस हल को मै नित्य निरन्तर निर्वाण की दिशा मे चलाया करता हू ।

२. मै यही कृषि करता हूं । इस कृषि से कृषक को अमृतफल मिलता है, और वह समस्त दुःखो से मुक्त हो जाता है ।

१--२. सु. नि. (कसिभारद्वाज सुत्त)

: ११ :

मैत्री-भावना

१. शांतपद के जिज्ञासु एवं आत्महित-कुशल मनुष्य का कर्तव्य यह है कि उसे सहनशील, सरलातिसरल, मधुरभाषी, मृदु और निरहंकारी बनना चाहिए।

२. हमें कोई ऐसा क्षुद्र आचरण नहीं करना चाहिए, जिससे कि सुज्ञजन हमें दोष दें। हमें सदा यही भावना करनी चाहिए कि जगत् के समस्त प्राणी सुखी, सत्क्षेम और सानंद रहें।

३. चर हों या स्थावर, बड़े हों या छोटे, दृष्ट हों या अदृष्ट, हमसे दूर रहते हों या पास, जगत् में जितने भी प्राणी हों, वे सब आनन्दित रहें।

४ न हम एक-दूसरे को धोखा दें, न किसी जगह एक दूसरे का अपमान करें, और न खीज या द्वेषबुद्धि से एक दूसरे को दुःख देने की मन में इच्छा रखें।

५. माता जिस प्रकार अपने स्नेह-सर्वस्व पुत्र को अपना जीवन खर्च करके भी पालती है, उसी प्रकार समस्त प्राणियों के प्रति हमें असीम प्रेम रखना चाहिए।

६. सर्व प्राणियों के प्रति हमें ऊपर, नीचे और चारों ओर असबाध, अवैर और असपत्न मैत्री की असीम भावना बढ़ानी चाहिए।

७. खड़े हों तब, चलते हों तब, बैठे हों तब या लेटे हों तब, जबतक नींद न आ जाय, तबतक हमें इस मैत्री भावना की स्मृति स्थिर रखनी चाहिए।

●

इसी अवस्था को इस लोक में **'ब्राह्म जीवन'** कहते हैं।

८ जिस मनुष्य के मन से लोभ, द्वेष और मोह ये तीन मनोवृत्तिया नष्ट हो गई हैं, वही चारो दिशाओं मे प्राणिमात्र के प्रति मैत्रीभाव प्रसारित कर सकता है। अपने मैत्रीमय चित्त से चारो दिशाओं मे बसनेवाले समस्त प्राणियो पर वह प्रेम की रसवर्षा करता है। करुणा, मुदिता और उपेक्षा की भावनाओं का उसे अनायास ही सुलाभ हो जाता है।

१—७. सु. नि. (मेत्त सुत्त) ८. अं. नि. (कालाम सुत्त)

: १२ :

अक्रोध

१. 'मुझे अमुक मनुष्य ने गाली दी, अमुक ने मुझे मारा, अमुक ने मुझे पराजित किया, अमुक ने मुझे लूट लिया' इस प्रकार के विचार की जो लोग मन मे गाठ बाघ लेते हैं, और वैर भंजाने की इच्छा रखते हैं, उनका वैर-भाव कभी शात नही होता।

२. वैर तो उन्हीका शात होता है, जो इस प्रकार के विचार हृदय से निकाल देते हैं कि 'मुझे अमुक ने गाली दी, अमुक ने मुझे मारा, अमुक ने मेरा पराभव किया, अमुक ने मुझे लूट लिया।'

३. वैर से वैर कभी शात नहीं होता। वैर प्रेम से ही शात होता है। यही सनातन नियम है।

●

४. 'दूसरे भले ही समझे, पर हम कलह से दूर ही रहेगे।' ऐसा, जो समझते हैं, उनका द्वेष या कलह नष्ट हो जाता है।

५. लोगो की हड्डिया तोड़ डालनेवाले, दूसरो का प्राण ले लेनेवाले, गाय, घोडा, धन-संपत्ति आदि का हरण करनेवाले और राष्ट्र में विप्लव मचानेवाले लोग भी मेल कर लेते हैं, उनमें भी एका हो जाता है, तब तुम्हारा मेल क्यो नहीं होता?

●

६. किसीसे कटु वचन न बोलो। यदि बोलोगे, तो वह भी तुमसे वैसा ही कटु वचन बोलेगा। झगड़े में दुःख बढ़ता ही है। कटु वचन बोलने से, बदले में, तुम्हें दंड मिलेगा। टूटा हुआ कांसा जैसा निःशब्द रहता है, उसी तरह अगर तुम स्वंय चुप रहोगे, तो तुम निर्वाणपद प्राप्त कर लोगे, तुम्हें कलह नहीं सतायेगा।

७. क्षमा के समान इस जगत्में दूसरा तप नहीं।

८. जो चढ़े हुए क्रोध को चलते हुए रथ की तरह रोक लेता है, उसीको मैं सच्चा सारथि कहूगा, और लोग तो केवल लगाम पकडनेवाले हैं।

९ अक्रोध से क्रोध को जीते, भलाई से बुराई को जीते, कृपण को दान से जीते, और झूठ बोलनेवाले को सत्य से जीते।

१०. क्रोध करनेवाले के ऊपर जो क्रोध करता है, उसका खुद उससे अहित होता है, पर जो क्रोध का जवाब क्रोध से नही देता, वह एक भारी युद्ध जीत लेता है। प्रतिपक्षी को क्रोधाव देखकर जो अत्यन्त विवेक के साथ शान्त हो जाता है, वह अपना और पराया दोनों का ही हित-साधन करता है।

११. तुझे कोई गाली ही नही, तेरे गाल पर कोई थप्पड मार दे, या पत्थर या हथियार से तेरे शरीर पर कोई प्रहार करे, तो भी तेरे चित्त में विकार नहीं आना चाहिए, तेरे मुंह से गन्दे शब्द नही निकलने चाहिए, तेरे मन मे उस समय भी तेरे शत्रु के प्रति अनुकपा और मैत्री का भाव रहना चाहिए, और किसी भी हालत मे क्रोध नही आना चाहिए।

१२. मनुष्य तभीतक शात और नम्र दीखता है, जबतक कोई उसके विरुद्ध अपशब्द नही कहता। पर जब उसे अपशब्द या निंदा सुनने का प्रसंग आता है, तभी इस बात की परीक्षा हो सकती है, वह वास्तव में शात और नम्र है या नहीं।

१३. जो धर्म के गौरव से धर्म को पूज्य मानकर शात और नम्र होता है उसीको सच्चा, शात और उसीको सच्चा नम्र समझना चाहिए। अपना मतलब साधने के लिए कौन शात और नम्र नहीं बन जाता?

१४. कोई मौके से बोलता है तो कोई बेमौके से बोल देता है; कोई उचित बात कहता है तो कोई अनुचित बात कह देता है; कोई मधुर

वचन बोलता है तो कोई कटु वचन बोलता है; कोई हित की बात कहता है तो कोई अहित की बात कहता है; कोई हितबुद्धि से बोलता है तो कोई द्वेषबुद्धि से बोलता है। इन सब प्रसंगो पर तुम्हारा चित्त विकार के वश नहीं होना चाहिए, तुम्हारे मुंह से गंदे शब्द नहीं निकलने चाहिए, तुम्हारे अतःकरण मे दया-मैत्री रहनी चाहिए, क्रूरता और द्वेष नहीं, और तुम्हे ऐसा अभ्यास करना चाहिए कि जिस मनुष्य ने तुम्हारे विरुद्ध कोई बात कही है, उसे ही आधार बनाकर तुम समस्त ससार पर मैत्री-भावना की सतत वर्षा कर सको।

१५. यदि कोई टोकरी और कुदाली लेकर यह कहे कि 'इस तमाम पृथिवी को मै खोदकर फेंक दूंगा!' दूसरा मनुष्य लाख का रंग, हल्दी का रग और मजीठ का रंग लेकर कहे कि 'इस समस्त आकाश को मै रंग डालूंगा!' और तीसरा मनुष्य घास की पूली सुलगाकर कहे कि 'इस गगा नदी को मै भस्म कर डालूंगा!' तो उन मनुष्यों के प्रयत्नो का पृथिवी, आकाश या गगा नदी पर कोई असर पडने का नहीं। इसी प्रकार दूसरे लोगो के बोलने का तुम्हारे हृदय पर तनिक भी बुरा असर नही पड़ना चाहिए।

१६. अगर चोर और लुटेरे आकर तुम्हारे शरीर के अग आरे से काटने लग जाय, और उस अवसर पर तुम्हारे मन मे उन लुटेरों के प्रति क्रोध या द्वेप आ जाय, तो तुम मेरे सच्चे अनुयायी नही कहे जा सकते।

ऐसे प्रसग पर भी तुम्हारे मन मे द्वेप नहीं आना चाहिए, तुम्हारे मुंह-से बुरे शब्द नही निकलने चाहिए, तुम्हारे अंतःकरण में दया और मैत्री की भावना रहनी चाहिए, और अपने शत्रु को आधारस्वरूप मानकर समस्त ससार पर तुम्हें निस्सीम मैत्री भावना करनी चाहिए।

१—३. ध. प. (यमक वग्गो) ४—५ म. नि. (उपक्किलेस सुत्तंत) ६. ध. प. (दंड वग्गो) ७. ध प (बुद्ध वग्गो) ८—९. ध. प. (कोध वग्गो) १०. बु. ली. सा. सं. (पृष्ठ ३०९) ११—१६. म. नि. (ककचूपम सुत्तंत)

: १३ :

तृष्णा

१. प्रमाद-रत मनुष्य की तृष्णा लता की भांति बढ़ती ही जाती है। वह एक वस्तु से दूसरी वस्तु तक इस तरह दौड़ती रहती है, जैसे वन में बंदर एक फल के बाद दूसरे फल की इच्छा करता है।

२. यह जहरीली तृष्णा जिसे जकड लेती है, उसके शोक वीरन घास की तरह बढ़ते ही जाते हैं।

३ इस दुर्जेय तृष्णा को जगत् में जो काबू में कर लेता है, उसके शोक इस प्रकार झड जाते हैं, जिस प्रकार कमल के पत्ते पर से जल के बिन्दु।

४. जैसे जड के दृढ़ होने के कारण और उसके नष्ट न होने से कटा हुआ वृक्ष भी फिर से उग आता है, वैसे ही जबतक तृष्णा की जड न कटे, तृष्णारूपी अनुशय (मल) नष्ट न हो, तबतक दुःख बराबर पैदा होता ही रहेगा।

५. ये रागयुक्त सकल्प सोतों के रूप मे चारों ओर बह रहे हैं, जिनके कारण तृष्णारूपी लता अंकुरित होती और जड पकड़ती रहती है। जहा भी कहीं तुम यह लता जड़ पकडती हुई देखो, वहीं प्रज्ञा की कुल्हाडी से उसकी जड काट डालो।

६. जाल में फंसे हुए खरगोश की तरह तृष्णा के पीछे पड़े हुए ये प्राणी इधर-उधर चक्कर काटते रहते हैं। संयोजनों अर्थात् मन के बंधनो में जकडे हुए ये मूढ़ लोग बराबर दुःख और क्लेश पाते है।

७. ये जो लोहे, लकडी या रस्सी के बंधन हैं इन्हें बुद्धिमान् लोग दृढ़ बंधन नहीं कहते। इनकी अपेक्षा दृढ़ बंधन तो वह चिंता है, जो

मणि, कुण्डल, पुत्र और कलत्र के लिए की जाती है।

८ जो मनुष्य राग में रत रहते हैं, वे अपनी ही बनाई धारा में इस प्रकार वह जाते हैं, जैसे मकड़ी अपने ही रचित जाल में फस जाती है। धीर पुरुष इस धारा को काटकर समस्त आकाक्षाओं और दुःखो से रहित हो जाते हैं।

९. जो प्राणी तर्क-वितर्क आदि सशयो से पीड़ित हैं, और तीव्र राग मे फंसा हुआ है तथा सदा सुख-ही-सुख की अभिलाषा करता है, उसकी तृष्णा बढ़ती ही जाती है, और वह प्रतिक्षण अपने लिए और भी मजबूत बंधन तैयार करता जाता है।

१०. जिसकी तृष्णा नष्ट हो गई, राग से जो विमुक्त हो गया, जो शब्द और उसका अर्थ जानता है और जिसे अक्षरो के क्रम का ज्ञान है, उसे 'महाप्राज्ञ' कहते हैं। निश्चय ही वह अतिम शरीरवाला है, अर्थात् वह निर्वाण प्राप्त कर लेगा।

११. संसार-सागर के पार जाने का प्रयत्न न करनेवाले मूर्ख मनुष्य को ये ऐहिक भोग नष्ट कर देते हैं। भोग की तृष्णा में फंसकर वह दुर्बुद्धि मनुष्य अपने-आपका ही हनन करता है।

१२. तृष्णा का साथी वनकर बार-बार जन्म लेनेवाले मनुष्य मनुष्यत्व अथवा मनुष्येतर भाव को प्राप्त करके ससार-समुद्र को पार नहीं कर सकता।

१३ 'तृष्णा से दुःख की उत्पत्ति होती है'—तृष्णा में यह दोष देखकर भिक्षु को चाहिए की वह वीततृष्ण, आदानविरहित (अपरिग्रही) और स्मृतिमान् होकर प्रव्रज्या ले ले।

१४. भक्तृष्णा का उच्छेद कर देनेवाले शांतचित्त भिक्षु की जन्मपरंपरा नष्ट हो जाती है, उसका पुनर्जन्म नहीं होता।

१५. मनुष्य जितना ही कामादि का सेवन करता है, उतनी ही उसकी तृष्णा बढ़ती जाती है। काम के सेवन में क्षणमात्र के लिए ही रसास्वाद मालूम देता है।

१—११. ध. प. (तण्हा वग्गो) १२—१४. स. नि. (द्वयतानुपस्सना सुत्त) १५. म. नि. (मागंदिय सुत्तंत)

: १४ :

अंत:शुद्धि

१ हे ब्राह्मण ! इन लकड़ियो को जलाकर तू क्यो शुद्धि मानता है ? यह शुद्धि नही है । यह तो एक बाह्य वस्तु है । पडित लोग इसे शुद्धि नही कहते । मै यह 'दारु-दाह' छोड़कर अपने अंदर ही ज्योति जलाता हू । नित्य अग्निवाला, नित्य एकातचित्तवाला होकर मै ब्रह्मचर्यव्रत का पालन करता हू । यही सच्ची शुद्धि है ।

२ हे ब्राह्मण ! तेरा यह अभिमान खरिया का भार है, क्रोध धुआं है, मिथ्या भाषण भस्म है, जिह्वा स्रुवा है और हृदय ज्योति का स्थान है। अपने-आपका दमन करने पर ही पुरुष को यह ज्योति प्राप्त होती है। यही सच्ची आत्मशुद्धि है ।

३ हे ब्राह्मण ! शीलरूपी घाटवाले निर्मल धर्मसरोवर में, जिसकी सतजन प्रशंसा करते हैं, नहाकर कुशलजन शुद्ध होते हैं । वे शरीर को बिना भिगोये ही पार उतर जाते हैं ।

४ श्रेष्ठ शुद्धि की प्राप्ति सत्य, सयम और ब्रह्मचर्य पर निर्भर करती है ।

●

५ अरे मूर्ख ! यह जटा-जूट रखा लेने से तेरा क्या बनेगा, और मृग-चर्म पहनने से क्या ? अंतर तो रागादि मलो से परिपूर्ण है, बाहर तू क्या धोता है ।

●

६. बाहुका, अविकक्क, गया और सुन्दरिका में, सरस्वती और प्रयाग तथा बाहुमती नदी में कलुषित कर्मोवाला मूढ़ चाहे नित्य ही नहावे, पर

शुद्ध नहीं होगा। क्या करेगी सुन्दरिका, क्या करेगा प्रयाग और क्या करेगी यह बहुलिका? ये सब तीर्थ उस कृतकिल्बिष (पापी) दुष्ट मनुष्य को शुद्ध नहीं कर सकते।

७. शुद्ध मनुष्य के लिए सदा ही फल्गु नदी है, सदा ही उपोसथ (व्रत का दिन) है। शुद्ध और शुचिकर्मा के व्रत तो सदा ही पूरे होते रहते हैं।

८. तू तो समस्त प्राणियों की कल्याण-कामना कर, यही तेरा तीर्थ-स्थान है। यदि तू असत्य नहीं बोलता, यदि तू प्राणियों की हिंसा नही करता, यदि तू बिना दिया हुआ नहीं लेता, और यदि तू श्रद्धावान् तथा मत्सररहित है, तो फिर गया जाकर क्या करेगा? तेरे लिए तो यह क्षुद्र जलाशय ही गया है।

●

९. पानी से शुद्धि नहीं होती। जो सत्यनिष्ठ और धर्मवान् है, वही शुचि है, वही शुद्ध है।

१०. अंतःशुद्धि न दृष्टि से, न श्रुति से और न ज्ञान से ही प्राप्त होती है। शीलव्रत पुरुष भी आध्यात्मिक शुद्धि नहीं दिला सकता; पर इतने से यह न समझना कि ये निरर्थक हैं और इनका त्याग करने से शुद्धि प्राप्त होती है। जबतक सम, विशेष और हीन का भाव बना रहेगा, तबतक शुद्धि दुर्लभ है।

●

११. जो तृष्णा के बंधन से नहीं छूटा, उस मनुष्य की शुद्धि न नग्न रहने से, न जटा रखाने से, न पंक लपेटने से, न भस्म रमाने से, और न विभिन्न आसनो के लगाने से ही होती है।

●

१२. तू अपने किये पापों से अपनेको ही मलिन बना रहा है। पाप छोड़ दे तो स्वयं ही शुद्ध हो जायगा। शुद्धि और अशुद्धि अपने ही हैं। अन्य मनुष्य अन्य मनुष्य को शुद्ध नहीं कर सकता।

१३ जिन वस्तुओं की उत्पत्ति हुई है वे सभी अनित्य हैं, जो इस बात को प्रज्ञा की आंखों से देखता है, वह सभी दुःखों से उदासीन हो जाता है। चित-शुद्धि का यही सच्चा मार्ग है।

१४. जितनी भी संस्कृत या उत्पन्न वस्तुएं हैं वे सभी दुःखदायी हैं। जो इस बात को जानता है और प्रज्ञा की आंखों से देखता है, वह सभी दुःखों से विरत हो जाता है। चित्त-शुद्धि का यही सच्चा मार्ग है।

१५. जितने भी धर्म या पदार्थ हैं वे सभी अनात्म हैं। जो इस बात को जानता है और प्रज्ञा की आंखों से देखता है, वह समस्त दुःखों से विरत हो जाता है। चित्त-शुद्धि का यही सच्चा मार्ग है।

१—४. बु. च. (सुद्धरिक भारद्वाज सुत्त) ५. ध. प. (ब्राह्मण वग्गो) ६—८. म. नि. (वत्थ सुत्तंत) ९. बु. च. (जटिल सुत्त) ११. ध. प.(दंड वग्गो) १२. ध. प. (अत्त वग्गो) १६—१५. ध. प. (मग्ग वग्गो)

: १५ :

चित्त

१. जिस समय मनुष्य का चित्त काम-विकार से व्यग्र हो जाता है और कामविकार के उपशमन का रास्ता उसे दिखाई नहीं देता, उस समय कामाध को यह नही सूझता कि क्या तो स्वार्थ है और क्या परार्थ।

२. जिस समय मनुष्य का चित्त क्रोधाभिभूत अथवा आलस्य के कारण जड़वत्, भ्रात, अथवा संशयग्रस्त हो जाता है, उस समय वह यथार्थ रीति से यह नहीं समझता कि अपना अथवा दूसरे का हित किसमे है।

३. बर्तन के पानी में काला रंग डाल देने के बाद जैसे उसमें हमें अपना प्रतिबिंब ठीक-ठीक नहीं दिखाई देता, उसी तरह जिसका चित्त काम-विकार से व्यग्र हो जाता है, उसे अपने हित-अहित का ज्ञान नही रहता।

४. स्वच्छ पानी का बर्तन जब गरम हो जाता है, तब उस पानी से भाप निकलने लगती है और वह खौलने लगता है। उस समय मनुष्य उस खौलते हुए पानी मे अपना प्रतिबिब नहीं देख सकता।

इसी तरह मनुष्य जब क्रोधाभिभूत होता है, तव उसकी समझ में यह नहीं आता कि उसका आत्महित किसमें है।

५. उस बर्तन के पानी मे अगर सिवार हो तो मनुष्य उसमें अपना प्रतिबिब नहीं देख सकता।

इसी प्रकार जिसका चित्त आलस्य से पूर्ण होता है, वह अपना ही हित नहीं समझ सकता, दूसरो का हित कैसे समझ सकेगा?

६ उस बर्तन का पानी अगर हवा से हिलने-डुलने लगे, तो उसमें मनुष्य अपना प्रतिबिंब कैसे देख सकता है?

इसी प्रकार भ्रातचित्त मनुष्य यह समझ ही नही सकता कि किसमें तो अपना हित है और किसमें पराया।

७. वह पानी अगर हाथ से हिला दिया गया हो, तो मनुष्य उसमें अपना प्रतिबिब ठीक-ठीक नही देख सकता।

इसी तरह जिसका चित्र संशयग्रस्त हो गया है, वह अपना और पराया हित-अहित समझ ही नहीं सकता।

८. वही पानी यदि निर्मल और शात हो, तो मनुष्य उसमें अपना प्रतिबिब स्पष्ट देख सकता है।

इसी प्रकार जिसका चित्त कामच्छद, व्यापाद (क्रोध), आलस्य, आतता और संशयग्रस्तता, इन पाच आवरणों से मुक्त हो गया है, वही अपना और पराया हित यथार्थ रीति से समझ सकता है।

९. जिस प्रकार पानी से निकलकर मछली थल मे आ पड़ने पर तड़-फड़ाती है, उसी प्रकार यह चित्त राग, द्वेष और मोह के फदे से निकलने के लिए कापता है।

१०. कठिनाई से वश मे आनेयोग्य चंचल और जहा-तहा दौड़नेवाले चित्त का दमन करना अच्छा है। दमन किया हुआ चित्त ही शातिदायक होता है।

११. कठिनाई से समझ मे आनेयोग्य, अत्यंत चालाक और जहा-तहा दौड़नेवाले चित्त की बुद्धिमान पुरुप को रक्षा करनी चाहिए; सुरक्षित चित्त से सदैव सुख मिलता है।

१२. दूर-दूरतक दौड़ लगानेवाले, एकाकी चलनेवाले, शरीर-रहित और हृदय की गुफा मे छिपे हुए इस चित्त को जो सयम मे रखता है, वही प्रबल मार के (विषयों के) बंधन से मुक्त हो सकता है।

१३. जिसका चित्त स्थिर नहीं, जो सच्चे धर्म को नहीं जानता और जिसके हृदय मे शाति नहीं, उसे पूर्ण ज्ञान कैसे हो सकता है?

१४ जिसका चित्त मल-रहित और अकंप्य है, जो सदा ही पाप और पुण्यविहीन है, उस सतत सजग रहनेवाले पुरुष के लिए कही भी भय नहीं।

१५. इस शरीर को घड़े के समान टूट जानेवाला समझकर इस

चित्त को गढ़ के समान सुदृढ़ करके प्रज्ञा के अस्त्र से विषयों के साथ युद्ध करे और जब विषयों को जीत ले तो उनके ऊपर कड़ी नजर रखे, असावधानी न करे।

१६. जितना हित माता, पिता या दूसरे भाई-बंधु कर सकते हैं, उससे कहीं अधिक हित मनुष्य का संयत चित्त करता है।

१७. अगर मकान का छप्पर खराब है, तो उसकी दीवारें इत्यादि अरक्षित ही समझनी चाहिए, धीरे-धीरे वह मकान भूमिसात ही होने-को है।

इसी तरह जो अपने चित्त को नहीं संभालता, उस मनुष्य के कर्म विकारग्रस्त हो जाते हैं, और इसका अत्यंत अनिष्ट परिणाम होता है। अपने चित्त को यदि वह संभाल लेता है तो उसके सारे कर्म सुरक्षित रहते हैं, और वह शांति से प्राण त्याग करता है।

१८. जिस समय चित्त में जड़ता आ गई हो, उस समय प्रश्रब्धि (शांति), समाधि और उपेक्षा, इन तीन बोध्यंगों की भावना करनी ठीक नहीं। किसी मनुष्य को आग सुलगानी हो, और वह चूल्हे में गीली लक-ड़िया और गीली घास-पात रखकर उसे फूंकने लगे तो क्या आग सुलग जायगी?

इसी प्रकार जिसका चित्त जड़ हो गया है, वह यदि प्रश्रब्धि, समाधि और उपेक्षा, इन तीन बोध्यंगों की भावना करेगा, तो उसके चित्त को उत्तेजना मिलने की नहीं।

१६ उस समय तो धर्म-प्रविचय (धर्मान्वेषण), वीर्य (उद्योग या मनोबल) और प्रीति (हर्ष), इन तीन बोध्यंगों की भावनाएं अत्यन्त उपयोगी हैं। सूखी लकड़ी और सूखा घास डालने से आग तुरंत सुलग जाती है।

इस चित्त की जाड्यावस्था में धर्म-प्रविचय, वीर्य और प्रीति, इन तीन बोध्यंगों की भावना करने से चित्त की जड़ता दूर हो जाती है और उसे अवश्य उत्तेजना मिलती है।

२०. पर, जिस समय चित्त भ्रांत हो गया हो, उस समय धर्म-प्रवि-

चय, वीर्य और प्रीति, इन तीन बोध्यंगों की भावना करनी ठीक नहीं। इन बोध्यंगो की भावना से चित्त-भ्राति का उपशमन नही होता, बल्कि वह और भी अधिक भ्रात हो जाता है।

२१. उस समय तो प्रश्रब्धि, समाधि और उपेक्षा, इन तीन बोध्यगो की भावना करनी चाहिए, क्योकि इन बोध्यंगो से भड़का हुआ चित्त ठिकाने पर आ जाता है, इन्ही बोध्यंगो की भावना से भ्रात चित्त को शाति मिलती है।

२२ केवल यह चित्त ही मरणशील मनुष्य का साथी है।

२३ जिस प्रकार उस मकान मे वर्षा का पानी सहज ही पैठ जाता है जो ठीक तरह से छाया हुआ नहीं होता, उसी प्रकार अनभ्यस्त (अ भावित) चित्त मे राग सहज ही प्रवेश कर जाता है।

२४ जैसे अच्छी तरह छाये हुए मकान में वर्षा का पानी आसानी से नही पहुच सकता, वैसे ही अनभ्यस्त चित्तके अदर राग प्रवेश नही हो सकता।

२५ अरे! यह तेरा गर्वीला रूप एक दिन जीर्ण-शीर्ण हो जायगा।

१—८. बु. ली सा सं (भाग ३. पृष्ठ २७०) ६—१६. ध. प. (चित्त वग्गो) १७. अं. नि. (कूट सुत्त) १८—२१. बु. ली. सा. सं, (पृष्ठ २७१) २२. अं नि. (दसक निपात) २३—२४. ध प. (यमक वग्गो)

: १६ :

अनित्यता

१. यह क्षणभंगुर शरीर रोगों का घर है। इस देह को सड-सडकर भग्न हो जाना है। आश्चर्य ही क्या, जीवन मरणांत जो ठहरा।

२. इस जराजीर्ण शरीर के साथ कौन मूर्ख प्रीति जोडेगा? इसकी हड्डियों को तो जरा देखो—शरदकाल की अपथ्य परित्यक्त लौकी की भांति या कबूतरों की-सी सफेद ये हड्डियां।

३. यह शरीर क्या है, हाडों का एक गढ है। यह गढ़ मांस और रक्त से लिपा हुआ है। इस गढ़ के भीतर बुढ़ापा, मृत्यु, अभिमान और डाह ने अड्डा बना रखा है।

४. इस चौथेपन में तू पीले पत्ते की तरह जीर्ण हो गया है। देख, ये यमदूत तेरे सामने खडे हैं। प्रयाण के लिए तो तू तैयार है, पर पाथेय (राह-खर्च) तेरे पास कुछ भी नहीं! अतः अब भी तू अपने लिए रक्षा का स्थान बना, उद्योग कर, पंडित बन, अपना यह मल धो डाल, दोष-रहित हो जा। इस प्रकार तू आर्यों का दुर्लभ दिव्यपद प्राप्त कर लेगा।

५. आयु तेरी अब समाप्त हो चली है। तेरा कोई निवासस्थान भी यहां नहीं, न पाथेय ही है। अतः तू अपने लिए रक्षा का स्थान बना, उद्योग कर, पंडित बन, और अपना यह मल पखारकर दोषरहित हो जा। इस तरह तू अब भी आर्यों का दुर्लभ दिव्य पद प्राप्त कर लेगा।

●

६. इस देह के भीतर कैसी-कैसी चीजें भरी हुई हैं—आंते, यकृत्-पिंड, मूत्राशय, फेफडे, तिल्ली, लार, थूक, पसीना, चरबी, रक्त, पीव, पित्त, विष्ठा और मूत्र!

७. इस नो दरवाजे की देह से कैसी-कैसी चीजें निकला करती हैं। आख, कान, नाक मुंह ये सभी मलद्वार हैं। शरीर के एक-एक छेद से पसीना निकलता है।

८. जब इस देह मे प्राण निकल जाते हैं, तो यह फूल जाती है और नीली पड जाती है। मरघट मे इसे फेंक देते हैं और सब सगे-सबंधी भी देह की उपेक्षा करते हैं।

९ कुत्ते, सियार, भेडिये और कीडे वहा उस देह को खाते हैं और कौए और गीध भी महोत्सव मनाते हैं।

१० ऐसी क्षणभंगुर और घृणित देह पर जो गर्व और दूसरो की अवहेलना करता है, उसका कारण सिवा उसकी मूढ़ता के और हो ही क्या सकता है ?

●

११. जागो ! बैठ जाओ ! दृढ़ निश्चय के साथ शाति का अभ्यास करो। तुम्हे गाफिल देखकर यह मृत्युराज मार कहीं अपने मोहपाश में न फसाले।

१२. शल्य तुम्हारे शरीर मे चुभा हुआ है, और तुम उससे पीडित हो रहे हो। आश्चर्य है कि इस दुःख-पीडा मे भी तुम्हे नींद आ रही है।

१३ अप्रमाद और प्रज्ञा के द्वारा अपने शरीर मे चुभा हुआ यह तीक्ष्ण शल्य निकाल लो न।

१४. अरे, यह जीवन कितना अल्प है ! सौ वर्ष पूरे होने से पहले ही यह समाप्त हो जाता है। और जो इनसे अधिक जीता है वह भी एक दिन जराजीर्ण होकर मर जाता है।

१५. मनुष्य जिसे मानता है कि यह मेरा है उसे भी एक दिन मृत्यु द्वारा नष्ट होना ही है, यह समझकर बुद्धिमान् धर्मोपासक 'ममत्व' नहीं करता।

१६. सपने मे देखी हुई वस्तु को जागने के बाद जैसे मनुष्य देख

नहीं सकता, वैसे ही वह अपने परलोकवासी प्रियजनों को नही देख सकता ।

१७. जो प्राणी परलोकवासी हो जाता है उसका यहा केवल नाम ही शेष रह जाता है ।

१८. लोभी मनुष्य न तो शोक का त्याग कर सकते हैं, न दुःख और डाह का ही ।

●

१९. ओह ! यह तुच्छ शरीर शीघ्र ही चेतनाशून्य हो सूखे ठूठ की तरह पृथिवी पर गिरेगा ।

●

२०. राग आदि के पुष्पो को चुननेवाले आसक्तियुक्त मनुष्य को मृत्यु उसी तरह पकड ले जाती है, जिस तरह कि सोये हुए गाव को बाढ़ बहा ले जाती है ।

●

२१. सोये हुए गांव को जैसे भारी बाढ़ बहा ले जाती है, वैसे ही पुत्रकलत्रादि में आसक्त पुरुष को धोखे-ही-धोखे मौत उठा ले जाती है ।

२२ न पुत्र रक्षा कर सकता है, न पिता और बधु-बाधव ही। जब मौत आकर घर दबाती है तब न जातिवाले रक्षक हो सकते हैं, न परिवारवाले ।

●

२३. अनित्यता न तो नगर-धर्म है, और न वह कुल-धर्म ही। समस्त मनुष्यों और देवताओं का यही स्वभाव है कि एक-न-एक दिन उन्हें मरना ही होगा ।

२४. मूर्ख सोचता है कि 'यह पुत्र मेरा है', 'यह धन मेरा है'। अरे, जब यह शरीर ही अपना नहीं है, तब किसका पुत्र और किसका धन ?

२५. ज़रा देखो तो इस विचित्र शरीर को ! तमाम व्रण-ही-व्रण हैं ।

पीडित है, तो भी अनेक संकल्पो से युक्त है! अरे इसकी स्थिति ही अनियत है। क्या ठिकाना कब छूट जाय!

१—५. ध. प. (जरा वग्गो) ६—१०. सु. नि. (विजय सुत्त) ११—१३. सु नि (उट्ठान सुत्त) १४—१८ सु. नि. (जरा सुत्त) १६. ध. प. (चित्त वग्गो) २०. ध. प. (पुप्फ वग्गो) २१—२२. ध. प. (मग्ग वग्गो) २३. थेरी अपदान (तृतीय भाणवार) २४. ध. प. (बाल वग्गो) २५ ध. प. (जरा वग्गो)

: १७ :

शोक किसके लिए

१. ऐसा कोई उपाय नहीं कि जिससे मृत्यु न हो। जिसने जन्म लिया है वह मरेगा अवश्य। प्राणियो का स्वभाव ही मृत्यु है।

२. पके हुए फलो को जिस तरह डाल से नीचे गिर पडने का भय है उसी तरह जन्मे हुए प्राणियो को मृत्यु का भय लगा रहता है।

३. कुम्हार के गढे हुए मिट्टी के बर्तन का जिस प्रकार टूटने पर पर्यवसान हो जाता है, उसी प्रकार प्राणियों के जीवन का मृत्यु में पर्य-वसान होता है।

४. छोटा हो या बडा, मूर्ख हो या पंडित, सभी मृत्यु के अधीन हैं। ये सभी प्राणी मृत्युपरायण हैं।

५. मृत्यु और जरा से यह सारा ससार ग्रसित हो रहा है। यह तो लोक का स्वभाव ही है, ऐसा समझकर आत्मज्ञ पंडित शोक नहीं करते।

६. जिसके आने और जाने का मार्ग तुझे मालूम नहीं, और जिसके दोनो ही अन्त तेरे देखने में नहीं आते, उसके लिए तू अकारथ ही शोक करता है।

७. कितना ही रोओ, कितना ही शोक करो, इससे चित्त को शान्ति तो मिलने की नहीं। उलटे दुःख ही बढेगा और शरीर पर भी शोक का बुरा प्रभाव पड़ेगा।

८. आप ही अपनेको कष्ट देनेवाला मनुष्य क्षीणकाय और निस्तेज हो जाता है। शोक से उन मृत प्राणियों को कोई लाभ तो पहुचता नहीं। अतएव यह शोक व्यर्थ है।

९. कोई सौ वर्ष या इससे अधिक जीवित रहे, तो क्या—एक-न-

एक दिन तो उन प्रियजनों के बीच से अलग होना ही है।

१०. अतः जो आपको सुखी रखना चाहता है, उसे अपने अन्तः-करण से इस शोकरूपी शल्य को खींचकर फेंक देना चाहिए।

११. यह चीज मेरी है या दूसरों की, ऐसा जिसे नहीं लगता और जिसे ममत्व की वेदना नहीं होती, वह कभी यह कहकर शोक नहीं किया करता की वह मेरी चीज नष्ट हो गई है।

१२. प्रिय वस्तु से ही शोक उत्पन्न होता है, और प्रिय से ही भय। प्रिय वस्तुओं के बंधन से जो मुक्त है, उसे शोक नहीं फिर, भय कहां से हो ?

१३. प्रेम या मोहासक्ति से ही शोक उत्पन्न होता है, और प्रेम से ही भय। प्रेम से जो मुक्त हो गया है उसे शोक कैसा—और फिर भय कहाँ से होगा ?

१४. इसी प्रकार राग, काम और तृष्णा से शोक तथा भय उत्पन्न होता है। राग, काम और तृष्णा से जो विमुक्त है उसका शोक से क्या सम्बन्ध—और फिर उसे भय कहाँ से होगा ?

१५. मनुष्य तो है ही क्या, ब्रह्मा के भी वश की यह बात नहीं कि जो जराधर्मी है उसे जरा (बुढ़ापा) न सताये, जो मर्त्य है उसकी मृत्यु न हो, जो क्षयवान है उसका क्षय न हो और जो नाशवान् है उसका नाश न हो।

१६. किसी प्रियजन की मृत्यु हो जाने के प्रसंग पर मूढ़ लोग यह विचार नहीं करते कि 'यह बात तो है नहीं कि मेरे ही प्रियजन को बुढ़ापा व्याधि और मृत्यु का शिकार होना पड़ा है, यह तो सारे संसार का धर्म है, प्राणिमात्र जरा और मृत्यु के पाश में बँधे हुए हैं !'

१७. मूढ़ लोग विवेकांध होकर शोक-समुद्र में डूब जाते हैं, और किंकर्तव्यविमूढ़ हो जाते हैं। न उन्हें अन्न रुचता है न जल। उनके शरीर की कांति क्षीण पड़ जाती है। काम-काज सब बंद हो जाता है।

उनकी यह दशा देखकर उनके शत्रु आनन्द मनाते हैं, कि चलो अच्छा हुआ, इनका प्रियजन तो मरा ही, यह भी उसके वियोग मे मरनेवाले है।

१८. पर बुद्धिमान् और विवेकी मनुष्य की बात इससे अलग है। वह जरा, व्याधि, मरण, क्षय और नाश का शिकार होने पर यथार्थ रीति से विचार करता है। यह देखकर कि इस विकार से तो जगत् मे कोई भी अछूता नही बचा, वह शोक नहीं करता। वह अपने अन्तःकरण से शोक के उस विषाक्त बाण को खींचकर फेंक देता है, जिस बाण से विद्ध मूर्ख मनुष्य अपनी ही हानि करते है।

१—१० सु नि. (सल्ल सुत्त) ११. सु. नि. (अत्तदंड सुत्त) १२—१४. ध. प. (पिय वग्गो) १५—१८. अं. नि. (कोसल सुत्त)

: १८ :

विषयों का मीठा विष

१. नेत्र, कान, नासिका, जिह्वा और त्वचा, इन पाँचों इन्द्रियों के रूप, शब्द, गंध, रस और स्पर्श से मनुष्य को जो सुख प्राप्त होता है उसीको मैं विषयों की जहरीली मिठाई कहता हूँ।

२. एक नौजवान आदमी व्यापार, खेती-पाती या नौकरी करके अपना निर्वाह करता है। अपने रोजगार-धन्धे में उसे भारी-से-भारी कष्ट झेलना पड़ता है, तो भी विषय-भोग की वस्तु प्राप्त करने के लिए वह दिन-रात प्रयत्न किया करता है। इतना परिश्रम करने पर भी, यदि उसकी मनचाही चीज उसे नहीं मिलती, तो वह शोकाकुल होकर विचार-विमूढ़ बन जाता है।

३. यदि उसे अपने उद्योग में यश मिल गया और अपनी वाञ्छित वस्तु प्राप्त हो गई, तो वह दिन-रात इसी चिन्ता मे पड़ा रहता है कि दुष्ट राजा या चोर उसे लूट न ले जायं, आग या बाढ से वह नष्ट न हो जाय और उससे दुश्मनी माननेवाले बन्धु-बान्धव कहीं उसे नुकसान न पहुँचा बैठे।

इन विचारों से उनका मन सदा ही शंकित और त्रस्त रहता है। और अगर उसकी आशंका सत्य निकली, तो उस मनुष्य के दुःख का पार नहीं रहता।

४. इन विषयों के लिए ही एक राजा दूसरे राजा के साथ, क्षत्रिय क्षत्रिय के साथ, वैश्य वैश्य के साथ, माता पुत्र के साथ, पुत्र माता के साथ, बाप लड़के के साथ, बहन भाई के साथ और मित्र मित्र के साथ लड़ता है। इन विषयों के पीछे क्या-क्या काड नहीं होते?—गाली-गलौज होता है, हाथापाई होती है, हथियार चल जाते हैं और लोग मारे भी

जाते हैं और नही तो मरणातक दुःख तो भोगना ही पडता है।

५. इन विषयो की प्राप्ति के लिए ही लोग लडने पर आमादा हो जाते हैं, और भीषण युद्धक्षेत्र मे उतर पडते हैं। खूब घमासान युद्ध होता है और रणक्षेत्र में कितने ही मनुष्य अस्त्र-शस्त्रो से मारे जाते है, कितने ही आहत होते हैं। विषयो की इस जहरीली मिठाई के पीछे उन्हे मरणातक दुःख भोगना पडता है।

६. इस विषय-भोग के लिए कितने ही मनुष्य चोरी करते हैं, डाका डालते हैं, राहगीरो पर टूट पडते हैं या दूसरो की स्त्रियो के साथ व्यभिचार करते हैं। विषय-भोग के शिकार उन चोरो, डाकुओं और व्यभिचारियो को पकड़कर राजा अनेक प्रकार का दंड देता है। उनके हाथ-पैर तोड़ डालता है, उनके नाक-कान काट लेता है या उनका सिर ही उड़ा देता है।

७. इस विषाक्त विषय-भोग के लिए ही मनुष्य मन, वचन और काया से इस लोक मे घोर-से-घोर दुराचार करता है और मृत्यु के बाद दुर्गति को प्राप्त होता है।

८. विषयो की आसक्ति छोड़ देने से ही मनुष्य विषय-विमुक्त हो सकता है।

९. जो ज्ञानवान् मनुष्य विषय-माधुर्य, विषय-दोष और विषय-मुक्ति को यथार्थ रीति से जानता है, वह स्वय विषयो का त्याग कर देता है, और दूसरों को भी विषयो के त्याग का उपदेश करता है।

१०. सौन्दर्य की मिठाई क्या है? किसी अत्यन्त सुरूपवती तरुणी को देखकर मन में जो मादक सुख उत्पन्न होता है वही सौन्दर्य की मिठाई है।

११. पर इस सौंदर्य की मिठाई में तो विकार है। वही सुन्दरी तरुणी जब वृद्धा हो जाती है, जब कमर झुक जाती है, बिना हाथ में लकड़ी लिये जब वह चल नहीं सकती, उसके सब अग शिथिल पड़ जाते हैं, दांत गिर जाते हैं, बाल सन-से सफेद हो जाते हैं, गर्दन हिलने

लगती है, चेहरे पर झुर्रियां पड़ जाती हैं, तब उसका वह पहले का सरस सौंदर्य और ललित लावण्य विनष्ट हो जाता है। यह है सौंदर्य का दोष।

१२. सौंदर्य के विषय मे आसक्ति न रखना ही सौंदर्य-जन्य भय से मुक्त होने का सच्चा मार्ग है। सौंदर्य की मिठाई क्या है, उसमें क्या दोष है, और उस दोष से हम किस प्रकार मुक्त हो सकते हैं, इस सबको जो बुद्धिमान् पुरुष यथार्थ रीति से समझता है, वह स्वयं तो रूप-रस के विषय से मुक्त हो ही जायगा, दूसरों को भी सौंदर्य-मुक्ति के मार्ग पर चलने की शिक्षा देगा।

१—१२ (महादुक्खक्खंध सुत्त)

: १६ :

वैराग्य

१. जैसे थोड़े पानी में मछलिया तडफडाया करती हैं, वैसे ही एक दूसरे के साथ अन्दर-ही-अन्दर विरोध करके दौडधूप करते हुए लोगों को देखकर मेरे अन्तःकरण मे भय का प्रवेश हुआ।

२. मुझे कुछ ऐसा लगने लगा कि यह जगत् असार है और समस्त दिशाएं मानो काप रही हैं। इस जगत् मे मैने अपने लिए आश्रय-स्थान खोजा, पर वह कहीं भी न मिला।

३. अरे, अन्ततक ये लोग लड़ते ही रहेंगे—यह देखकर मुझे दुनिया से अत्यन्त अरुचि हो गई है। तब अपने ही हृदय में चुभा हुआ दुदर्श शल्य मुझे दिखाई दिया।

४. यदि शल्य से मनुष्य बिंधा हुआ है, तो वह भागदौड़ मचायेगा ही, पर यदि वह अन्तर से बिंधा हुआ बाण खींचकर निकाल लिया जाय, तो अपनी सारी दौडधूप बंद करके वह एक जगह स्थिर हो जायगा।

५. ओह ! कैसी भयंकर आग लगी है ! सब जल रहे हैं। नेत्रेंद्रिय जल रही है। रूप जल रहा है। नेत्रेंद्रिय और रूप से उत्पन्न विज्ञान भी जल रहा है।

६. ये सब किस आग से जल रहे हैं ? राग की आग से, द्वेष की आग से, और मोह की आग से ये सब जल रहे हैं। जन्म, जरा, मृत्यु, शोक, परिदेव, दुःख, दौर्मनस्य आदि परिणामों से ये सब जल रहे हैं।

७. इसी प्रकार श्रोत्रेंद्रिय और उसका विषय शब्द, घ्राणेंद्रिय और उसका विषय गंध, जिह्वा और उसका विषय रस, त्वचा और उसका विषय स्पर्श, मन और उसका विषय धर्म—ये सभी जल रहे हैं। रागाग्नि, द्वेषाग्नि और मोहाग्नि इन्हें जला रही हैं।

८. जन्म, जरा, मृत्यु, शोक और दुःख को जानकर श्रुतवान् आर्य-श्रावक (गृहस्थ) को चाहिए कि चक्षु और रूप, श्रोत्र और शब्द, घ्राण और गंध, जिह्वा और रस, त्वचा और स्पर्श तथा मन और धर्म में आसक्त न हो, निर्वेद के द्वारा विराग-निधि प्राप्त करले।

९. विराग होने पर मनुष्य को ज्ञान उत्पन्न होता है, और तभी उस का जन्मक्षय होता है। ब्रह्मचर्य-व्रत भी तभी समाप्त होता है। मनुष्य फिर यहां आकर जन्म नहीं लेता।

१०. मैं जराधर्मी हूं, व्याधिधर्मी हूं, मरणधर्मी हूं, इन तमाम प्रिय वस्तुओं और प्रियजनों से निश्चय ही एक दिन वियोग होगा। मैं जो बुरा या अच्छा काम करूंगा, उसका मुझे ही भागीदार होना पड़ेगा। अतः कर्म ही मेरा धन है, और कर्म ही मेरा मित्र।

११. 'मैं जराधर्मी हूं' ऐसा विचार करने से मनुष्य का यौवनमद नष्ट हो जाता है। इस तारुण्य-मद के कारण मनुष्य काया, वचन और मन से पाप करता है, पर जो यह स्मरण रखता है कि मैं खुद जराधर्मी हूं, उसका यह मद नष्ट हो जाता है—नष्ट नहीं, तो कुछ कम तो हो ही जाता है।

१२. 'मैं व्याधिधर्मी हूं' इस बात का चिन्तन करने से यह लाभ होता है कि जिस आरोग्य-मद के कारण मनुष्य त्रिविध पापों का आचरण करता है वह नष्ट हो जाता है—नष्ट नहीं, तो कुछ कम तो हो ही जाता है।

१३. 'मैं मरणधर्मी हूं' इस बात का चिन्तन करने से मनुष्य का जीवन-मद नष्ट हो जाता है। यही इस चिन्तन का लाभ है।

१४. 'तमाम प्रिय वस्तुओं और प्रियजनों से एक दिन वियोग होने को है, इस बात का स्मरण रखने से मनुष्य प्रिय वस्तु अथवा प्रियजन के अर्थ पापाचरण करने में प्रवृत्त नहीं होता, और न उसे वियोग-दुःख का ही भाजन बनना पड़ता है।

१५. जिस वस्तु का जन्म हुआ है उसका नाश न हो, क्या यह शक्य है ?

१–४. सु. नि. (अत्तदंड सुत्त) ५–६. बुद्धदेव (जगन्मोहन वर्मा) १०–१४ बु.ली.सं. (पृष्ठ २६३) १५. दी. नि. (महापरिनिब्बाण सुत्त)

: २० :

वाद-विवाद

१. निंदा और स्तुति दोनो ही विवाद के विषफल हैं। ये क्षुद्र वस्तुएं चित्त के उपशमन की कारणभूत नहीं बनती। अतः विवाद कल्याणप्रद नहीं, ऐसा जाननेवाला कभी विवाद में न पड़े।

२. प्र०—जिसे कुछ लोग परमधर्म मानते हैं उसे ही कुछ लोग हीन धर्म मानते हैं। ये सभी जब अपनेको कुशल समझते हैं, तो फिर उनमें कौन वाद सच्चा है?

३. उ०—वे कहते हैं कि हमारा ही धर्म परिपूर्ण है, और दूसरों का धर्म हीन है। इस प्रकार लड़ाई-झगड़ा खड़ा करके वे वाद-विवाद करते हैं और कहते हैं कि हमारी ही दृष्टि सच्ची है!

४. दूसरों की की हुई निंदा से ही हीन ठहरने लगे, तो फिर कोई भी पथ श्रेष्ठ नहीं ठहर सकता; सभी अपने-अपने पथ को दृढ़ (नित्य) और दूसरों के पंथ को हीन कहते हैं।

५. जिस तरह कि वे अपने पंथ की स्तुति करते हैं वैसे ही उनकी सद्धर्म की पूजा है। ऐसा होने पर तो सभी पथ सच्चे हो सकते हैं, क्योंकि उनकी अपनी समझ में तो उनके यहाँ शुद्धि है ही।

६. ब्राह्मण को दूसरों से कुछ सीखना नहीं है। उनका यह आग्रह नहीं है। उसकी दृष्टि श्रेष्ठ है। वह तो वाद-विवाद से परे चला जाता है, क्योंकि वह यह नहीं मानता कि कोई दूसरा धर्मपथ श्रेष्ठ है।

७. कुछ लोग यह समझते हैं कि जैसे हम जानते हैं, जैसे हम देखते हैं, केवल वही ठीक है और शुद्धि इसी दृष्टि से होगी। पर बुद्ध शुद्धि दूसरे ही रास्ते से बताते हैं।

८. देखनेवाला केवल नामरूप ही देखेगा और उसे देखकर उतना

ही उसे ज्ञान होगा। वह न्यून अथवा अधिक भले ही देखे, पर विज्ञजन इतने से ही शुद्धि नहीं मानते।

९. अपने कल्पित किये हुए मत को महत्त्व देनेवाले और हठ-पूर्वक वाद-विवाद करनेवाले मनुष्य को उपदेश से समझाना या शात करना कठिन है। जिस मत का वह आश्रय लेता है उसीमें कल्याण है और उसीमें शुद्धि है ऐसा वह कहता है और ऐसा ही वह मानता है।

१०. किंतु ब्राह्मण की बात तो निराली है, वह कभी विकल्प में नहीं पड़ता। वह भिन्न-भिन्न मतों को जानता है, और उन मतों की उपेक्षा करता है, जिन्हें दूसरे लोग सीखते हैं।

११. इस जगत् में ग्रंथि का त्याग करके विवादापन्न लोगों के बीच मुनि पक्षपाती नहीं होता। वह इस अशांत लोक में शांत और उपेक्षक बना रहता है। वह उन मतों को नहीं सीखता, जिन्हें दूसरे लोग सीखते हैं।

१२. तृष्णा, काम, भय, दृष्टि, और अविद्या, इन पूर्व के आस्रवों (प्रवाहों) को तोड़कर वह नये आस्रवों का सचय नहीं करता, साम्प्रदायिक मत-मतांतरों से वह मुक्त हो जाता है और इस जगत्-पाश में बद्ध नहीं होता।

●

१३. जो सम, अधिक या न्यून समझता है, वही विवाद करता है। तीनों भेदों में जो अचल है, उसकी दृष्टि में सम क्या, अधिक क्या और न्यून क्या? जिसमें सम-विषम नहीं है, वह विवाद करे तो क्या और किसके साथ?

●

१४. सभी लोग इस बात का प्रतिपादन करते हैं कि पंथ तो हमारा ही शुद्ध है, दूसरों के पंथों में शुद्धि कहाँ? जिस पंथ का हमने आश्रय लिया है, उसी पंथ में श्रेय है, ऐसा कहनेवाले अपनेको भिन्न-भिन्न

पथों मे बाँध लेते हैं।

१५. वे लोग वाद-विवाद करने के इरादे से सभा मे जाकर एक दूसरे को मूर्ख ठहराते हैं। अपनेको शास्त्रार्थ मे कुशल समझनेवाले वे लोग वाहवाही लूटने की इच्छा से ही वाद-विवाद करते हैं।

१६. सभा मे जब वे शास्त्रार्थ करते हैं तब प्रशंसा लूटने की इच्छा से दूसरों पर वाणों का प्रहार करने लगते हैं। यदि वाद मे वे हार जाते है तो मारे शर्म के मुह छिपा लेते हैं, और जब उनकी निदा होती है तो क्रोध मे आकर दूसरो के दोष ढूंढ़ने लगते हैं।

१७. वाद-विवाद मे पडकर मनुष्य या तो दूसरो पर आघात कर बैठता है या खुद अपनेको ही चोट पहुचाता है। विवाद मे यह विष देखकर उससे निवृत्त हो जाना ही अच्छा है, कारण कि उसमे सिवा एक प्रशसा-लाभ के और कोई भी लाभ नही।

१८. सभा मे कभी-कभी दूसरो के वाद को भग करके वे प्रशंसा प्राप्त करते हैं और इससें उन्हे खूब हर्ष होता है। विजय के गर्व मे आसमान की तरफ सिर उठाकर चलते हैं। सभा में विजय क्या होती हैं, मानो उनका जीवन कृतकृत्य हो जाता है।

१६. पर उनका यह विजय-गर्व ही अन्त में उनके अधःपात का कारण होता है। अतः बुद्धिमान् मनुष्य को वाद-विवाद में पड़ना ही नहीं चाहिए। वाद-विवाद से तो कुछ अन्तःशुद्धि होती नही, तब फिर अहकार बढाने से लाभ ?

२०. वाद-विवाद के युद्ध मे प्रवृत्त करनेवाला मेरा अहकार पहले ही नष्ट हो चुका है अब विवाद करू तो कैसे ?

२१. जिन्होंने प्रतिपक्ष-बुद्धि को नष्ट कर दिया है, और जो अपने पथ की खातिर दूसरे पंथो के साथ विरोध-भाव नही रखते, जिनका यहा अपना कुछ नहीं है, उनके पास जाकर, अरे वादी, तुझे क्या मिलने को है ?

२२. मनुष्य अपने-अपने मत से चिपटकर और दूसरों के साथ

वाद-विवाद करके अपनेको कुशल कहलाना चाहते हैं। कहते हे कि वे ही धर्म के ज्ञाता हैं, और जो विरोधी हैं वे हीन हैं।

२३. इस प्रकार झगडा-टंटा खडा करके ये वाद-विवाद करते हैं। दूसरों को ये मूर्ख और अकुशल कहनेवाले हैं। इनमें से किसका वाद सच्चा है?

२४. दूसरों के धर्म को न जाननेवाला मनुष्य यदि मूर्ख, पशु और हीन बुद्धि ठहराया जाय, तो फिर इन साम्प्रदायिक मतों से चिपटे रहनेवाले सभी मूर्ख और हीन-बुद्धि ठहरेंगे।

२५. ये जो एक दूसरे को मूर्ख कहते हैं, यह ठीक नही। क्योंकि ये अपने-अपने मत को ही सत्य मानते हैं और एक दूसरे को मूर्ख ठहराते हैं।

२६ कुछ लोग जिसे युक्तियुक्त सत्य मानते हैं, उसे ही दूसरे तुच्छ और असत्य बताते हैं, और इस तरह व्यर्थ का टंटा खडा करके वाद-विवाद करते हैं।

२७ हमारे ही मत मे अत्यंत सार है, इस प्रकार के विचार को आश्रय देकर ये वाद-विवादी लोग अपनेको कृतकृत्य मान रहे हैं। अहंकार में मत्त हो ये पूर्ण अभिमानी बन बैठे हैं। अपने मान से ही अपने को अभिषिक्त कर रहे हैं। यह सब साम्प्रदायिकता को गले से लगाने का परिणाम नहीं तो क्या है?

२८ 'शुद्धि तो इसी पंथ मे है' ऐसा ये प्रतिपादन करते हैं और कहते हैं कि दूसरे पथो मे शुद्धि नहीं। इस प्रकार अपने पथ को दृढ़ बतलानेवाले ये सप्रदाय-पंथी भिन्न-भिन्न पथो में निविष्ट हो रहे हैं।

२९ जिस मनुष्य ने तमाम रूढ़ मतो को छोड़ दिया है, वह फिर किसीके साथ वाद-विवाद नहीं करता।

३०. अस्थिर मनुष्य ही वाद-विवाद में पड़ता है। निश्चल मनुष्य को क्या पड़ा है कि वह किसीके साथ वाद-विवाद करे? जो न आत्मवाद मे फसा है, न उच्छेदवाद में उसके पास साम्प्रदायिकता का काम

ही क्या ? उसने तो सारी साम्प्रदायिकता धो डाली है। फिर वह क्यों और किसके साथ वाद-विवाद करे ?

१—१२. सु. नि. (महावियूह सुत्त) १३ बु. च. (मागंदियसुत्तत) १४—२१ अट्ठक वग्ग (पसूर सुत्त) २२—२९. सु. नि. (चूल वियूह सुत्त) ३०. सु. नि. (दुट्ठट्ठक सुत्त)

: २१ :

गृहस्थ के कर्त्तव्य

१. जिस आर्यश्रावक (गृहस्थ) को छह दिशाओं की पूजा करनी हो वह चार कर्म-क्लेशो से मुक्त हो जाय। जिन चार कारणों के वश होकर मूढ़ मनुष्य पापकर्म करने मे प्रवृत्त होता है, उनमे से उसे किसी भी कारण के वश नही होना चाहिए। और संपत्ति-नाश के उसे छह दर-वाजे बंद कर देने चाहिए।

२. छह दिशाओं से यहा क्या तात्पर्य है? माता-पिता को पूर्व दिशा, गुरू को दक्षिण दिशा, पत्नी को पश्चिम दिशा, बधु-बाधव को उत्तर दिशा, दास और श्रमिक को नीचे की दिशा तथा साधु-संत को ऊपर की दिशा समझना चाहिए।

३. चार कर्म-क्लेश क्या हैं? हिसा, चोरी, व्यभिचार और असत्य-भाषण, ये चार कर्म-क्लेश हैं। गृहस्थ को इनसे हमेशा दूर रहना जाहिए।

४. किन चार कारणों के वश होकर मूढ़जन पाप-कर्म करते हैं? स्वेच्छाचार, द्वेष, भय और मोह के कारण अज्ञजन पाप करते हैं। आर्यश्रावक को इनमें से किसी कारण के वश होकर पाप-कर्म मे प्रवृत्त नही होना चाहिए।

५. संपत्ति-नाश के छह दरवाजे कौन-से हैं? मद्यपान, रात मे अवारागर्दी, नाच-तमाशे का व्यसन, जुआ, दुष्ट मनुष्यों की संगति और आलस्य।

६. मद्यपान के व्यसन से संपत्ति का नाश होता है, इसमे तो सदेह ही नही। फिर मद्यपान से कलह बढ़ता है, और वह रोगो का घर तो है ही। इससे अपकीर्ति भी पैदा होती है। यह व्यसन लज्जा को नष्ट और बुद्धि को क्षीण कर देता है। मद्यपान के छह दुष्परिणाम हैं।

७ जिसे रात में इधर-उधर घूमने-फिरने का चसका लग जाता है, उसका शरीर स्वयं अरक्षित रहता है। उसकी स्त्री और बाल-बच्चे भी सुरक्षित नही रह सकते। वह अपनी संपत्ति नही संभाल सकता। उसे हमेशा यह डर लगा रहता है कि कही कोई मुझे पहचान न ले। उसे झूठ बोलने की आदत पड़ जाती है। और वह अनेक कष्टो में फंस जाता है।

८ नाच-तमाशे देखने मे कई दोष हैं। नाच-तमाशा देखनेवाला हमेशा इसी परेशानी मे पडा रहता है कि आज कहा नाच है, कहा तमाशा है, कहा गाना-बजाना है। अपने काम-धन्धे का उसे स्मरण तक नही रहता।

९ जुआरी आदमी जुये में अगर जीत गया, तो दूसरे जुआरी उससे ईर्ष्या करने लगते हैं; और अगर हार गया तो उसे भारी दुःख होता है। और उसके धन का नाश तो होता ही है, उसके मित्र और उसके सगे-संबंधी भी उसकी बात पर विश्वास नही करते। उनकी ओर से उसे बार-बार अपमान सहन करना पड़ता है। उसके साथ कोई नया रिश्ता नहीं जोडना चाहता, क्योंकि लोगों को यह लगता है कि यह जुआरी आदमी अपने कुटुम्ब का पालन-पोषण करने में असमर्थ है।

१०. अब दुष्टों की संगति का दुष्परिणाम सुनो। धूर्त, दारूखोर, लुच्चे, चोर आदि सभी तरह के नीच मनुष्यों का साथ होने से दिन-प्रति-दिन उसकी स्थिति गिरती ही जाती है और अन्त मे वह हीन-से-हीन दशा को पहुंच जाता है।

११. आलस्य के फल भी महान् भयंकर हैं। एक दिन आलसी आदमी इस कारण काम नहीं करता कि आज बडी कडाके की सरदी पड रही है और दूसरे दिन बेहद गरमी के कारण वह जी चुराता है! किसी दिन कहता है कि अब तो शाम होगई है, कौन काम करने जाय; और किसी दिन वह कहता है कि अभी तो बहुत सवेरा है, काम का वक्त अभी कहा हुआ? इस तरह आज का काम कलके ऊपर छोड़कर वह

कोई नई संपत्ति का तो उपार्जन कर नहीं सकता; और अपने पूर्वजों का पूर्वार्जित धन नष्ट करता जाता है।

१२. उपर्युक्त चारों कर्म-क्लेशों, चारों पाप-कारणों और छहों विपत्ति-द्वारों को त्याग करने के बाद गृहस्थ को छह दिशाओं की पूजा आरम्भ करनी चाहिए। उपर्युक्त प्रत्येक दिशा के पाच-पाच अंग हैं।

१३. माता-पितारूपी पूर्व दिशा की पूजा के ये पाच अंग है :

(१) उनका काम करना;
(२) उनका भरण-पोषण-करना;
(३) कुल में चले आये हुए सत्कर्मों को जारी रखना;
(४) माता-पिता की संपत्ति का भागीदार बनना;
(५) दिवंगत माता-पिता के नाम पर दान-धर्म करना।

यदि इन पाच अगो से माता-पिता को पूजा जाय, तो वे अपने पुत्र पर पाच प्रकार का अनुग्रह करते हैं :

(१) पाप से उसका निवारण करते हैं;
(२) कल्याणकारक मार्ग पर उसे ले जाते है;
(३) उसे कला-कौशल सिखाते हैं;
(४) योग्य स्त्री के साथ उसका विवाह कर देते है;
(५) उपयुक्त समय आने पर अपनी सपत्ति उसे सौप देते हैं।

१४. गुरुरूपी दक्षिण दिशा की पूजा के ये पाच अंग हैं :

(१) गुरु को देखते ही खड़ा हो जाना;
(२) गुरु बीमार पड़े तो उनकी सेवा करना;
(३) गुरु जो सिखाये उसे श्रद्धापूर्वक समझ लेना;
(४) गुरु का कोई काम हो तो कर देना;
(५) वह जो विद्या दे उसे उत्तम रीति से ग्रहण करना।

शिष्य यदि इन पाच अंगों से गुरु की पूजा करता है, तो गुरु उसपर पाच प्रकार का अनुग्रह करता है :

(१) सदाचार की शिक्षा देता है;

(२) उत्तम रीति से विद्या पढाता है ;
(३) जितनी भी विद्याए उसे आती हैं, उन सबका ज्ञान शिष्य को करा देता है ;
(४) अपने संबंधियों और मित्रों मे उसके गुणो का बखान करता है ;
(५) जब कहीं बाहर जाता है, तब ऐसी व्यवस्था कर देता है कि जिससे शिष्य को खाने-पीने की कोई अडचन न पडे ।

१५. पत्नी-रूपी पश्चिम दिशा की पूजा के ये पाँच अग हैं :
(१) उसे मान देना ;
(२) उसका अपमान न होने देना ;
(३) एक पत्नीव्रत का आचरण करना ;
(४) घर का कारबार उसे सौंपना ;
(५) उसे वस्त्र और आभूषणों की कमी न पडने देना ।

पति यदि इन पाच अंगों से पत्नी की पूजा करता है, तो वह अपने पति पर पाच प्रकार का अनुग्रह करती है :
(१) घर में सुन्दर व्यवस्था रखती है ;
(२) नौकर-चाकरों को प्रेम के साथ रखती है ;
(३) पतिव्रता रहती है ;
(४) पति उसे जो संपत्ति देता है उसकी रक्षा करती है, उसे उडाती नहीं ।
(५) घर के सब काम-काजों मे तत्पर रहती है ।

१६. बधु-बाधवरूपी उत्तर दिशा की पूजा के ये पाच अग हैं :
(१) जो वस्तु उन्हे देने योग्य हो वह उन्हे देना ;
(२) उनसे मधुर वचन बोलना ;
(३) उनके उपयोगी बनना ;
(४) उनके साथ निष्कपट व्यवहार रखना ;

(५) समान भाव से बर्ताव करना।

जो आर्यश्रावक इन पाच अंगो से अपने बधु-बाधवो की पूजा करता है, उसपर वे पाच प्रकार का अनुग्रह करते हैं :

(१) उसपर यकायक संकट आ पडने पर वे उसकी रक्षा करते हैं ;
(२) संकट-काल मे वे उसकी संपत्ति की भी रक्षा करते है ;
(३) विपत्ति में उसे धीरज बधाते हैं ;
(४) विपत्ति-काल में उसका त्याग नहीं करते ,
(५) उसके बाद उसकी संतान पर भी उपकार करतें है।

१७. सेवकों को सूचित करनेवाली जो नीचे की दिशा है, उसकी पूजा के पाच अंग ये हैं :

(१) उनकी शक्ति देखकर उनसे काम करने को कहना ;
(२) उन्हे यथोचित वेतन देना ;
(३) बीमार पडें तो उनकी सेवा-शुश्रूषा करना ;
(४) यथावसर उन्हें उत्तम भोजन देना ;
(५) समय-समय पर उनकी उत्तम सेवा के बदले उन्हे इनाम इत्यादि देना।

इन पाच अंगों से मालिक अगर नौकरो की पूजा करता है, तो अपने मालिक पर वे पाच प्रकार का अनुग्रह करते हैं :

(१) मालिक के उठने से पहले उठते हैं :
(२) मालिक के सोने के बाद सोते हैं ;
(३) मालिक के माल-असबाब की चोरी नही करते ;
(४) उत्तम रीति से काम करते हैं ;
(५) अपने मालिक का यश गाते हैं।

१८. साधु-संतो की जो ऊपर की दिशा है, उसकी पूजा के ये पांच अंग हैं :

(१) शरीर से आदर करना ;

(२) वचन से आदर करना ;
(३) मन से आदर करना ;
(४) भिक्षा के लिए आवे तो उन्हें किसी प्रकार की हानि न पहुचाना ;
(५) इन्हें उनके उपयोग की वस्तु देना ।

इन पाच अंगो से जो आर्यश्रावक साधु-सन्तो की पूजा करता है, उसपर वे साधु-सन्त छह प्रकार का अनुग्रह करते हैं :

(१) पाप से उसका निवारण करते हैं ;
(२) कल्याणकारक मार्ग पर उसे ले जाते हैं ;
(३) प्रेमपूर्वक उसपर दया करते हैं ;
(४) उसे उत्तम धर्म की शिक्षा देते हैं ;
(५) शंका-निवारण करके उसके मन का समाधान करते है ;
(६) उसे सुगति का मार्ग दिखा देते है ;

१९. दान, प्रिय वचन, अर्थचर्या और समानात्मकता, अर्थात्, दूसरो को अपने समान समझना, ये लोक-सग्रह के चार साधन हैं। बुद्धिमान् मनुष्य इन चारों साधनों का उपयोग करके जगत् में उच्चपद प्राप्त करता है।

१—१९. बु. च. (सिगालोवाद सुत्त)

चार संवास

१. संवास चार प्रकार होता है :

(१) शव शव के साथ वास करता है:

(२) शव देवी के साथ सवास करता है;

(३) देव शव के साथ सवास करता है,

(४) देव देवी के साथ सवास करता है;

२. जिस घर में पति हिंसक, चोर, दुराचारी, झूठा, शराबी. दुःशील, पापी, कृपण और कटुभाषी होता है; और उसकी पत्नी भी वैसी ही दुष्टा होती है, वहा शव शव के पास वास करता है।

३. जिस घर मे पति हिंसक, चोर, दुराचारी, झूठा, शराबी, दुःशील पापी, कृपण और कटुभाषी होता है; और उसकी पत्नी अहिंसक, अचौर, सदाचारिणी, सच्ची, नशा न करनेवाली, सुशीला, पुण्यवती. उदार और मधुरभाषिणी होती है; वहा शव देवी के साथ संवास करता है।

४. जिस घर मे पति अहिंसक, अचौर, सदाचारी, सच्चा, मद्य-विरत, सुशील, पुण्यात्मा, उदार और मधुरभाषी होता है; और उसकी पत्नी हिंसक, चोर, दुराचारिणी, झूठी, नशा करनेवाली, दुःशीला, पापिनी, कंजूस और कटुभाषिणी होती है, वहा देव शव के साथ संवास करता है।

५. जिस घर मे पति और उसकी पत्नी दोनों ही अहिंसक, अचौर, सदाचार-रत, नशा-विरत, सुशील, पुण्यवंत, उदार और मधुरभाषी होते हैं, वहा देव देवी के साथ सवास करता है।

१—५. अं. नि. (४. २. १. ३)

: २३ :

मित्र और अमित्र

१. जो मद्यपानादि के समय या आखो के सामने प्रिय बन जाता है, वह सच्चा मित्र नही। जो काम निकल जाने के बाद भी मित्र बना रहता है, वही मित्र है।

२. इन चारो को मित्र के रूप में अमित्र समझना चाहिए।

(१) दूसरो का धन हरण हरनेवाला;
(२) कोरी बाते बनानेवाला;
(३) सदा मीठी-मीठी चाटुकारी करनेवाला;
(४) हानिकारक कामो मे सहायता देनेवाला;

३ जो बुरे काम मे अनुमति देता है, सामने प्रशंसा करता है, पीठ-पीछे निदा करता है, वह मित्र नही, अमित्र है।

४. जो मद्यपान-जैसे प्रमाद के कर्मो में साथ और आवारागर्दी में प्रोत्साहन देता है और कुमार्ग पर ले जाता है वह मित्र नहीं, अमित्र है। ऐसे शत्रुरूपी मित्र को खतरनाक रास्ते की भाति छोड देना चाहिए।

५. वास्तविक सुहृद इन चार प्रकार के मित्रो को समझना चाहिए :

(१) सच्चा उपकारी;
(२) सुख-दुःख में समान साथ देनेवाला;
(३) अर्थप्राप्ति का उपाय बतानेवाला;
(४) सदा अनुकंपा करनेवाला;

६. जो प्रमत्त, अर्थात् भूल करनेवाले की और उसकी संपत्ति की रक्षा करता है, भयभीत को शरण देता है, और सदा अपने मित्र का लाभ दृष्टि में रखता है, उसे उपकारी सुहृद समझना चाहिए।

७. जो अपना गुप्त भेद मित्र को बतला देता है, मित्र की गुप्त

बात को गुप्त रखता है, विपत्ति में मित्र का साथ देता है और उसके लिए अपने प्राण भी होम करने को तैयार रहता है, उसे ही सच्चा सुहृद समझना चाहिए।

८. जो पाप का निवारण करता है, पुण्य का प्रवेश करता है और सुगति का मार्ग बतलाता है वही 'अर्थआख्यायी', अर्थात् अर्थ-प्राप्ति का उपाय बतलानेवाला सच्चा सुहृद है।

९. जो मित्र की बढ़ती देखकर प्रसन्न होता है, मित्र की निन्दा करनेवाले को रोकता है, और प्रशंसा करने पर प्रशंसा करता है, वही सच्चा अनुकम्पक मित्र है।

ऐसे मित्रों की सत्कारपूर्वक माता-पिता और पुत्र की भांति सेवा करनी चाहिए।

●

१०. जगत् में विचरण करते-करते अपने अनुरूप यदि कोई सत्पुरुष न मिले तो दृढ़ता के साथ अकेला ही विचरे; मूढ़ के साथ मित्रता नहीं निभ सकती।

●

११. जो छिद्रान्वेषण किया करता है और मित्रता टूट जाने के भय से सावधानी के साथ बर्तता है, वह मित्र नहीं है।

पिता के कन्धे पर बैठकर जिस प्रकार पुत्र विश्वस्त रीति से सोता है उसी प्रकार जिसके साथ विश्वासपूर्वक बर्ताव किया जा सके, और दूसरे जिसे फोड़ न सकें, वही सच्चा मित्र है।

●

१२. अकेला विचरना अच्छा, किन्तु मूर्ख मित्र का सहवास अच्छा नहीं।

●

१३. यदि कोई होशियार, सुमार्ग पर चलनेवाला और धैर्यवान

साथी मिल जाय, तो तमाम विघ्न-बाधाओं को झेलते हुए भी उसके साथ रहना चाहिए।

१—९. दी. नि. (सिगालोवाद सुत्त) १०. ध. प. (बाल वग्गो) ११. सु. नि. (हिरि सुत्त) १२. बु. च. (पारिलेयक सुत्त) १३. सु. नि. (खग्गविसाण सुत्त)

: २४ :

जाति नैसर्गिक कैसी ?

१ जाति मत पूछ, तू तो बस एक आचरण पूछ। देख, आग चाहे जैसे काष्ठ से पैदा होती है। इसी प्रकार 'नीच कुल' का मनुष्य भी धृतिमान्, सुविज्ञ और निष्पाप मुनि होता है।

२. तो क्या तुम ऐसा मानते हो कि यहा मूर्द्धाभिषिक्त क्षत्रिय राजा विविध जातियो के सौ मनुष्यो को एकत्रित करे और उनसे कहे कि "आप सब, जो क्षत्रिय-कुल से ब्राह्मण-कुल से और राजन्य-कुल से उत्पन्न हैं, यहा आवे—और साखू की या शाल वृक्ष की अथवा चन्दन की या पद्म-काष्ठ की अरणी लेकर आग बनावे, तेज पैदा करे—

"और, आप लोग भी आवे, जो चाडाल-कुल से, निषाद-कुल से, बसोर-कुल से, रथकार-कुल से और पुक्कस-कुल से उत्पन्न हुए है, और कुत्ते के पीने की, सूअर के पीने की कठौती (कठरी), धोबी की कठौती की या रेंड की लकडी की अरणी लेकर आग बनावे, तेज पैदा करें।"

तो क्या तुम मानते हो कि क्षत्रिय-ब्राह्मण-वैश्य-शूद्र-कुलो से उत्पन्न पुरुषो द्वारा साखू-शाल-चन्दन-पद्म की अरणी लेकर जो आग उत्पन्न की गई है, जो तेज पैदा किया गया है, वही अर्चिमान् (लौवाली), वर्ण-मान् और प्रभास्वर अग्नि होगी ?

और, चाडाल-निषाद-बसोर-रथकार-पुक्कस-कुलोत्पन्न पुरुषो द्वारा श्व-पान कठरी की, शूकर-पान कठरी की तथा रेंड-काष्ठ की अरणी लेकर जो आग उत्पन्न की गई है, जो तेज पैदा किया गया है, वह अर्चि-मान्, वर्णवान् और प्रभास्वर अग्नि न होगी ? क्या इस आग से अग्नि का काम नही लिया जा सकेगा ?

३ यह तो तुम जानते ही हो कि जीव-जन्तुओ में एक दूसरे से

वहुत सी बिभिन्नताएं और विचित्रताए पाई जाती हैं, और उनमे श्रेणिया भी अनेक हैं।

इसी प्रकार वृक्षों और फलों में भी विविध प्रकार के भेद-प्रभेद देखने मे आते हैं, उनकी जातिया भी कई प्रकार की हैं।

देखो न, साप कितनी जातियो के हैं ! जलचरो और नभचरो के भी असंख्य स्थिर भेद हैं, जिनसे उनकी जातिया लोक मे भिन्न-भिन्न मानी जाती है।

४ परन्तु मनुष्यो मे ? मनुष्यो के शरीर मे तो ऐसा कोई भी पृथक् चिह्न (लिंग), भेदक चिह्न कही देखने मे नही आता ! उनके केश, सिर, कान, आख, मुख, नाक, गर्दन, कंधा, पेट, पीठ, हथेली, पैर, नाखून आदि अगो मे कहा है वैसी विभिन्नताएं ?

५ जो मनुष्य गाय चराता है, उसे हम चरवाह कहेगे, ब्राह्मण नहीं।

६ जो व्यापार करता है वह व्यापारी ही कहलायगा; और शिल्प करनेवाले को हम शिल्पी ही कहेगे, ब्राह्मण नही।

७ दूसरों की परिचर्या करके जो अपनी जीविका चलाता है, वह परिचर ही कहा जायगा, ब्राह्मण नहीं।

८. अस्त्र-शस्त्रो से अपना निर्वाह करनेवाला मनुष्य सैनिक ही कहा जायगा, ब्राह्मण नही।

९ अपने कर्म से कोई किसान है तो कोई शिल्पकार। कोई व्यापारी है तो कोई अनुचर। कर्म पर ही यह जगत् स्थित है। अपने कर्म से ही एक मनुष्य ब्राह्मण बन सकता है और दूसरा अब्राह्मण।

१० प्राणि-हिंसक, चोर, दुराचारी, झूठा, चुगलखोर, कटुभाषी, बकवादी, लोभी, द्वेषी, और झूठी धारणावाला चाहे ब्राह्मण हो चाहे क्षत्रिय अथवा वैश्य हो या शूद्र, मरने के बाद वह दुर्गति को प्राप्त होगा, नरकगामी होगा।

११ क्या केवल ब्राह्मण ही प्राणि-हिंसा, चोरी, दुराचार, झूठ, चुगलखोरी, कटुवचन, बकवाद, लोभ और द्वेष से विरत होकर सुगति को प्राप्त हो सकता है? क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र नहीं?

१२ क्या केवल ब्राह्मण ही वैर-रहित और द्वेप-रहित होकर मैत्री की भावना कर सकता है? क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र नहीं? ऐसी भावना ब्राह्मण भी कर सकता है, क्षत्रिय भी कर सकता है, वैश्य भी कर सकता है और शूद्र भी कर सकता है।

१३. क्या ब्राह्मण ही मांगलिक स्नानचूर्ण लेकर नदी में मैल धो सकता है? क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र नहीं?

१४. दो जुड़वा भाई हैं। एक तो अध्ययनशील और उपनीत, किंतु, दुराचारी और पापी है, दूसरा अन्-अध्ययनशील, अन्-उपनीत, किंतु शीलवान् और धर्मात्मा है। इनमें से यज्ञ अथवा आतिथ्य में प्रथम भोजन आप किसे करायेंगे? उसीको न, जो अन्-अध्ययनशील और अन्-उपनीत होते हुए भी शीलवान् और धर्मात्मा है?

१५ माता-पिता के रज-वीर्य से जन्म लेनेवाला जीव न क्षत्रिय होता है, न ब्राह्मण—न वैश्य होता है न शूद्र।

१६. उच्चकुलवाला भी प्राणि-हिंसक, चोर, मिथ्याचारी, झूठा, चुगलखोर कटुभाषी, बकवादी, लोभी और द्वेषी होता है। इसलिए मैं उच्च कुलीनता को श्रेय नहीं देता। साथ ही उच्च कुलीनता को 'पापीय' भी नहीं कहता, क्योंकि उच्च कुलवाला मनुष्य भी अहिंसक, अचोर, मिथ्याचार-विरत, अद्वेषी आदि होता है।

१७. नीचकुलोत्पन्न भी, इसी तरह हिंसक होता है और अहिंसक भी; सच्चा होता है और झूठा भी; लोभी होता है और लोभ-विरत भी; द्वेषी होता है और अद्वेषी भी।

●

१८ जिस आश्रय को लेकर आग जलती है, वही उसकी संज्ञा

होती है। काष्ठ से जलनेवाली आग की संज्ञा काष्ठ-अग्नि, और गोमय (उपले) के आश्रय से जलनेवाली आग की संज्ञा गोमय-अग्नि होती है। किंतु आग का काम इन सभी अग्नियों से लिया जा सकता है।

●

१९ यवन और कंबोज तथा दूसरे भी सीमान्त प्रदेशों में दो ही वर्ण होते हैं—आर्य और दास। मनुष्य वहां भी आर्य से दास हो सकता है, और दास से आर्य। फिर इसका कोई अर्थ नहीं कि अमुक वर्ण ही जन्मना श्रेष्ठ है।

●

२० जो मनुष्य जातिवाद और गोत्रवाद के बंधन में बंधे हुए हैं, वे अनुपम विद्याचरण-संपदा से दूर ही हैं।

●

---

१. बु. च. (अत्तदीप सुत्त) २ म नि. (अस्सलायण सुत्तंत) ३—१०. म नि (वासेट्ठ सुत्तंत) ११—१५. म. नि. (अस्सलायण सुत्तंत) १६—१८. म. नि. (फसुकारी सुत्तंत) १९. म. नि. (अस्सलायण सुत्तंत) २०. बु. च. (अंबट्ठ सुत्त)

: २५ :

ब्राह्मण किसे कहे ?

१ ब्राह्मण मै उसे कहता हू जो अपरिग्रही है; जिसने समस्त बधन काटकर फेक दिये है, जो भय-विमुक्त होगया है और संग एवं आसक्ति से विरत है, मै उसीको ब्राह्मण कहता हू।

२. जो विना चित्त विगाड़े गाली, हनन और बधन को सहन करता है, क्षमा-वल ही जिसका सेनानी है, मै उसीको ब्राह्मण कहता हू।

३ जो अक्रोधी है, वृती है, शीलवान् है, बहुश्रुत है, संयमी है और अतिम शरीरवाला है, उसे ही मै ब्राह्मण कहता हू।

४ कमल के पत्ते पर जल की भाति, और आरे की नोक पर सरसो की तरह जो विषय-भोगो मे लिप्त नहीं होता मै उसे ही ब्राह्मण कहता हू।

५. चर-अचर सभी प्राणियो में प्रहार-विरत हो जो न मारता है और न मारने की प्रेरणा ही करता है, उसे मै ब्राह्मण कहता हू।

६. जो इस प्रकार की आकर्कश, आदरयुक्त और सत्यवाणी बोलता है कि जिससे जरा भी पीडा नही पहुचती, मै उसे ब्राह्मण कहता हू।

७ वड़ी हो चाहे छोटी, मोटी हो या पतली, शुभ हो या अशुभ, जो संसार में किसी भी बिना दी हुई चीज़ को नही लेता, उसे मै ब्राह्मण कहता हू।

८ जिसने यहा पुण्य और पाप दोनो की ही आसक्ति छोड दी है, और जो शोकरहित, निर्मल और परिशुद्ध है, उसे ही मै ब्राह्मण कहता हू।

९ मानुष भोगों का लाभ छोड दिव्य भोगो के लाभ को भी जिसने लात मार दी है; किसी लाभ-लोभ में जो आसक्त नहीं, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूं।

१०. राग और घृणा का जिसने त्याग कर दिया है, जिसका स्वभाव शीतल है और जो क्लेशरहित है, ऐसे सर्व-लोक-विजयी वीर पुरुष को मै ब्राह्मण कहता हू।

११. जिसके पूर्व, पश्चात् और मध्य मे कुछ नही है, और जो पूर्ण तथा परिग्रहरहित है, उसे मै ब्राह्मण कहता हू।

१२. जो ध्यानी, निर्मल, स्थिर, कृतकृत्य और आश्रव-(चित्तमल) रहित है, जिसने सत्य को पा लिया है, उसे मै ब्राह्मण कहता हू।

१३ जो न मन से पाप करता है, न वचन से और न काया से, मन, वचन और काया पर जिसका सयम है उसे मै ब्राह्मण कहता हू।

१४ न जटा रखने से कोई ब्राह्मण होता है, न अमुक गोत्र से, और न जन्म से ही। जिसने सत्य और धर्म का साक्षात्कार कर लिया, वही पवित्र है, वही ब्राह्मण है।

१५ जो गम्भीर प्रज्ञावाला है, मेधावी है, मार्ग और अमार्ग का ज्ञाता है, और जिसने सत्य पा लिया है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हू।

१६ जिसने घृणा का क्षय कर दिया है, जो भली-भाति जानकर अकथ पद का कहनेवाला है और जिसने अगाध अमृत प्राप्त कर लिया है, उसे मै ब्राह्मण कहता हू।

१७. जो पूर्वजन्म को जानता है, सुगति और अगति को जो देखता है और जिसका पुनर्जन्म क्षीण होगया है। तथा जो अभिज्ञान-(दिव्यज्ञान) परायण है, उसे मै ब्राह्मण कहता हू।

१८ मूर्खों की धारणा में यह चिरकाल से घुसा हुआ है कि "ब्राह्मण जन्म से होता है"; ज्ञानी पुरुष यह कदापि नहीं कहेगे कि ब्राह्मण जन्म से होता है।

१९ अमुक माता की योनि से उत्पन्न होने के कारण मै किसी मनुष्य को ब्राह्मण नहीं कहता।

२० जो पुरोहिताई करके अपनी जीविका चलाता है वह ब्राह्मण

नहीं, याचक है।

२१ ब्राह्मण पर प्रहार नही करना चाहिए, और ब्राह्मण को भी उस प्रहारक पर कोप नही करना चाहिए। ब्राह्मण पर जो प्रहार करता है उसके लिए धिक्कार है। और उसे भी धिक्कार है, जो उसके लिए कोप करता है।

●

२२ प्राचीन ब्राह्मणों के पास न पशु थे, न सुवर्ण, न धान्य। उनके पास तो एक स्वाध्याय का ही धन-धान्य था। वे तो ब्रह्म निधि के धनी थे।

२३ वे सयतात्मा और तपस्वी थे। विषय-भोगो को छोड़कर वे सदा ज्ञान और ध्यान मे ही निरत रहते दे।

२४ विविध वर्ण के वस्त्रो, सेजो, और अतिथिशालाओ से समृद्ध राष्ट्र उन ब्राह्मणो का अभिवन्दन करते थे।

२५ ब्राह्मण अवध्य थे, अजेय थे और धर्म से अभिरक्षित थे।

२६. प्राचीन काल के वे ब्राह्मण अडतालीस वर्ष तक अखंड कौमार ब्रह्मचर्य पालन करते थे।

२७ उस युग के ब्राह्मण विद्या और आचरण की खोज में रहते थे।

२८. वे लोग ब्रह्मचर्य, शील, अकुटिलता, मृदुता, तपस्या, सुप्रीति, अहिसा और क्षमा के प्रशसक थे।

●

२९. ब्राह्मण कौन? जो निष्पाप है, निर्मल है, निरभिमान है, सयत है, वेदान्त-पारंगत है, ब्रह्मचारी है, ब्रह्मवादी (निर्वाणवादी) और धर्मप्राण है, वही ब्राह्मण है।

●

३०. जिसने सारे पाप अपने अन्तःकरण से दूर कर दिये, अहंकार की मलिनता जिसकी अतरात्मा का स्पर्श भी नही कर सकती, जिसका ब्रह्मचर्य परिपूर्ण है, जिसे इस लोक के किसी भी विषय की तृष्णा नहीं

है, जिसने अपनी अन्तर्दृष्टि से ज्ञान का अंत देख लिया, वही अपनेको यथार्थ रीति से ब्राह्मण कह सकता है।

१—११. म. नि. (वासेठ्ठ सुत्तंत) १२—१७ ध. प. (ब्राह्मण-वग्गो) १८—२०. म. नि. (वासेठ्ठ सुत्तंत) २१. ध. प. (ब्राह्मण-वग्गो) २२—२८. बु. च. (ब्राह्मण धम्मिय सुत्त) २९. वि. पि. (महा-वग्ग) ३०. वि. पि. (महावग्ग)।

: २६ :

चांडाल कौन ?

१. क्रोधी, वैर माननेवाला, पापी, गुणीजनों को दोष देनेवाला, मिथ्या दृष्टि रखनेवाला और मायावी मनुष्य ही वृषल अर्थात् चांडाल है।

२. जो प्राणियों का वध करता है, प्राणियों के ऊपर जो दयाभाव नहीं रखता, उसे चांडाल समझना चाहिए।

३. जो गांवों और नगरों को लूटता और वीरान कर देता है, दुनिया में जो लुटेरे के नाम से पहचाना जाता है, उसे चांडाल समझना चाहिए।

४. जो मनुष्य कर्ज तो लेता है, पर जब देनदार मांगने आता है तो साफ नट जाता है और कहता है कि मुझे तो तेरा कुछ देना ही नहीं, उसे चांडाल समझना चाहिए।

५. जो अपने लिए, दूसरों के लिए, अथवा पैसे के लिए झूठ बोलता है, उसे चांडाल समझना चाहिए।

६. जो बलात्कार से अथवा प्रेम से अपने इष्टमित्रों की स्त्रियों के साथ व्यभिचार करता है, उसे चांडाल समझना चाहिए।

७. जो समर्थ होते हुए भी अपने वृद्ध माता-पिता का पालन-पोषण नहीं करता, उसे चांडाल समझना चाहिए।

८. लाभ का हितकर उपाय पूछने पर जो हानिकारक उपाय सुझाता है अथवा संदिग्ध वचन बोलता है, उसे चांडाल समझना चाहिए।

९. जो दूसरों के घर जाकर उनका आतिथ्य स्वीकार करता है, पर यदि वे लोग कभी उसके घर आ जायं, तो वह उनका आदर-सत्कार नहीं करता, ऐसा चांडाल नहीं तो क्या है?

१०. जो अहंभाव के कारण आत्मस्तुति और परनिंदा करता है, उसे चांडाल समझना चाहिए।

११ जो मनुष्य क्रोधी, कृपण मत्सरयुक्त, शठ और निर्लज्ज होता है और जिसे लोकनिंदा के भय की तनिक भी परवा नहीं, उसे चाडाल समझना चाहिए ।

१२ जो अनर्ह (अयोग्य) होकर भी अपनेको योग्य समझता है वह ब्रह्मलोक में चोर है और ऐसे पुरुष को वृपलाधम (नीचातिनीच चाडाल) कहते हैं ।

१३ केवल जन्म से कोई वृपल या चाडाल नही होता, और न जन्म से कोई ब्राह्मण होता है । कर्म से ही मनुष्य चाडाल होता है, और कर्म से ही ब्राह्मण ।

१—१३. सु नि (वसल सुत्त)

: २७ :

भिक्षु

१ जिस भिक्षु ने शकाओं का प्रवाह पार कर लिया है, जिसने तृष्णा का शल्य निकालकर फेक दिया है, निर्वाण में जिसकी लौ लगी हुई है, जो निर्लोभी है और सदेवक जगत् का नेता है उसे **मार्गजिन** भिक्षु कहते हैं।

२ निर्वाण-पद को जानकर जो धर्मोपदेश तथा धर्म का विवेचन करता है, उस शंका-निवारक भिक्षु को **मार्गदेशक** भिक्षु कहते हैं।

३. उत्तम रीति से उपदिष्ट धर्म-मार्ग में जो संयमी है, स्मृतिवान् है और निर्दोष पदार्थों का सेवन करता है, उसे **मार्गजीवी** भिक्षु कहते हैं।

४. साधुओ का वेश धारण करके संघ में जबर्दस्ती घुस आनेवाला जो धृष्ट भिक्षु गृहस्थों की अपकीर्ति फैलाता है और जो मायावी, असंयमी तथा ढोंगी होते हुए भी साधु के रूप में दुनिया को ठगता फिरता है, उसे **मार्गदूषक** भिक्षु कहते हैं।

५. संघ में कोई गृहासक्त, पापेच्छु, पाप-संकल्पी और पापाचारी भिक्षु देखने में आये, तो तुम सब मिलकर उसका बहिष्कार करदो, उस कचरे को फेकदो, संघ के उस सड़े हुए हिस्से को छील डालो।

६. काया और वचन से जो शान्त है, भलीभाति जो समाहित अर्थात् समाधियुक्त है, जिसने जगत् के तमाम लोभों को अस्वीकार कर दिया है, उसे **उपशान्त** भिक्षु कहते हैं।

●

७. जो भिक्षु अपनी तरुणाई मे बुद्ध के शासन (बुद्ध-धर्म) में योग देता है, वह इस लोक को इस प्रकार प्रकाशित करता है, जैसे मेघों से मुक्त चंद्रमा।

८ अतिशय प्रमोदयुक्त और बुद्ध-शासन में प्रसन्नचित्त भिक्षु उस सुखमय प्रशांत पद को प्राप्त कर लेता है, जिसमें मनुष्य की समस्त वासनाएं शांत हो जाती हैं।

●

९. जो धर्म में रमण करता है, धर्म में रत रहता है और धर्म का चिंतन और धर्म का अनुसरण करता है, वह भिक्षु सद्धर्म से पतित नहीं होता।

●

१० जो भिक्षु मैत्री भावना से विहार करता है और बुद्ध के शासन (धर्म) में श्रद्धावान् रहता है, वह सुखमय शांतपद को प्राप्त कर लेता है, उसकी समस्त वासनाएं शांत हो जाती हैं।

●

११. भिक्षु को अपनी निंदा सुनकर अस्वस्थ और स्तुति सुनकर गर्वोन्मत्त नहीं होना चाहिए। लोभ, मात्सर्य, क्रोध, और निंदा का उसे सदा के लिए परित्याग कर देना चाहिए।

१—४. सु. नि. (चुन्द सुत्त) ५. नि. (धम्मचरिय सुत्त)
६—१०. ध. प. (भिक्खु वग्गो) ११ सु. नि. (तुवट्टक सुत्त)

: २८ :

सम्यक् परिव्राजक

१. जो लौकिक एव दिव्य कामसुख मे आसक्त नही, वही धर्मज्ञ भिक्षु संसार का अतिक्रमण करके सम्यक् परिव्राजक हो सकता है।

२. जो भिक्षु निंदा, क्रोध और कृपणता का त्याग कर देता है, वह अनुरोध-विरोध से मुक्त होकर इस जगत् मे सम्यक् परिव्राजक कहा जाता है।

३. प्रिय और अप्रिय का त्याग करके जो अनासक्त, अनाश्रित तथा संयोजना से विमुक्त है, वही इस जगत् में सम्यक् परिव्राजक है।

४. उपाधि को जो निस्सार समझता है और ग्रहण करने मे जो लोभ (छंदराग) का निरसन करता है, इस जगत् में वही सम्यक् परिव्राजक है।

५. भलीभाति धर्म का तत्त्व समझकर जो मन, वचन और कर्म से दूसरो के साथ अविरोध रीति से बर्ताव करता है, जो निर्वाण-पद की इच्छा रखता है, उसीको मै इस जगत् मे सम्यक् परिव्राजक कहूगा।

६. लोभ और आसक्ति को छोडकर जो छेदन-बधन से विरत हो गया है, शकाओं को पार कर गया है, और जिसके हृदय से तृष्णा का शल्य निकल गया है, वही भिक्षु इस जगत् में सम्यक् परिव्राजक है।

७. अपना कर्त्तव्य धर्म समझकर जो भिक्षु किसी भी प्राणी की हिसा नहीं करता, वही इस जगत् में सम्यक् परिव्राजक है।

८. जिसके आस्रव (दोष) क्षीण तथा अहंकार नष्ट हो चुका है, जिसने कामसुखो को लात मारकर संसार-समुद्र को पार कर लिया है और दात, शांत और स्थिरात्मा है, वही इस जगत् मे सम्यक् परिव्राजक है।

९. जो अतीत और अनागत संस्कारो की कल्पना को पार कर गया

है, जिसकी प्रज्ञा अत्यन्त विशुद्ध है और जो समस्त आयतनों से मुक्त हो-गया है, वही इस जगत् में परिव्राजक है।

१०. 'आर्य सत्यों' को जानकर और धर्म को समझकर तथा आस्रवो का विनाश स्पष्टतापूर्वक देखकर जो समस्त उपाधियों का क्षय कर देता है, वही इस जगत् में सम्यक् परिव्राजक है।

१--१०. सु. नि. (सम्मा परिब्बाजनिय सुत्त)

: २९ :

प्रश्नोत्तरी

१. प्रश्न—(१) जूठन क्या है ?

(२) दुर्गंध क्या है ?

(३) मक्खियां क्या हैं ?

उत्तर—(१) लोभ और राग जूठन है।

(२) द्रोह दुर्गन्ध है।

(३) अकुशल वितर्क अर्थात् बुरे विचार मक्खियां हैं।

२. प्रश्न—(१) जगत् का संयोजन क्या है ?

(२) उसकी विचारणा (चिंता) क्या है ?

(३) किस धर्म के नाश से उसे निर्वाण प्राप्त होता है ?

उत्तर—(१) लोभ या तृष्णा जगत् का संयोजन है।

(२) वितर्क उसकी विचारणा है।

(३) तृष्णा के नाश से जगत् को निर्वाण प्राप्त होता है।

३ प्रश्न—किस प्रकार के बर्ताव से मनुष्य के विज्ञान (चित्त की धारा का निरोध होता है ?

उत्तर—आंतरिक और बाह्य वेदनाओं का अभिनंदन न करते हुए जो बर्तता है, उसका विज्ञान निरुद्ध हो जाता है।

४. प्रश्न—(१) यह जगत् किससे ढका हुआ है ?

(२) किसके कारण यह प्रकाशित नहीं होता ?

(३) इसका अभिलेपन क्या है ?

(४) जन्मादि दुःख महाभय है।

उत्तर—(१) यह जगत् अविद्या से ढका हुआ है।

(२) मात्सर्य और प्रमाद के कारण यह प्रकाशित नहीं होता है।

(३) वासना इसका अभिलेपन है।

(४) जन्मादि दुःख महाभय है।

५. प्रश्न—(१) चारों ओर जो ये प्रवाह बह रहे हैं, इनका निवारक क्या है?

(२) प्रवाहों का नियम क्या है?

(३) ये प्रवाह किस वस्तु से रोके जा सकते हैं।

उत्तर—(१) जगत् में जो ये प्रवाह बह रहे हैं उनकी निवारक स्मृति है।

(२) स्मृति ही उन प्रवाहों की नियामक है।

(३) प्रज्ञा से वे रोके जा सकते हैं?

६. प्रश्न—'प्रज्ञा' और 'स्मृति' इन नाम-रूपों का निरोध कहां होता है?

उत्तर—नाम और रूप का पूर्णतः निरोध विज्ञान के निरोध से होता है।

७. प्रश्न—संसार की ओर मनुष्य किस प्रकार देखे कि जिससे मृत्युराज उसकी ओर न देख सके।

उत्तर—सदैव स्मृति रखते हुए इस तरह देखे कि जगत् शून्य है। इस भांति आत्म-दृष्टि को त्याग देनेवाला मनुष्य मृत्यु को पार कर जाता है। इस प्रकार संसार की ओर देखनेवाले मनुष्य की ओर मृत्युराज नहीं देखता।

८. प्रश्न—जो कामोपभोगों से विमुक्त है, तृष्णारहित है और संशयों को पार कर गया है, उसका मोक्ष किस प्रकार का होता है?

उत्तर—जो कामोपभोगों से विमुक्त है, तृष्णा से रहित है और संशयों से पार हो गया है, उसके लिए मोक्ष-जैसा कोई पदार्थ रहा ही नहीं। (वही उसका मोक्ष है।)

९. प्रश्न—(१) वह वासना-रहित होता है, या उसकी कोई वासना शेष रहती है?

(२) वह प्रज्ञावान् होता है, या प्रज्ञा की कल्पना करने-वाला ?

उत्तर—(१) वह वासना-रहित होता है, उसकी कोई वासना शेष नही रहती।

(२) वह प्रज्ञावान् होता है, प्रज्ञा की कल्पना करने-वाला नहीं। वह मुनि सर्वथा कामभव मे अनासक्त और अकिंचन होता है।

१०. प्रश्न—महान भयानक बाढ के बीचोंबीच संसार मध्यभाग में खडे हुए जरा-मृत्युपरायण मनुष्य के लिए कौन-सा द्वीप शरणस्थान है ?

उत्तर—आकिंचन्य और अनादान (ग्रहण न करना) ही उसके लिए महान् विशाल द्वीप है, जिसे मै जरा और मृत्यु का क्षय करने-वाला 'निर्वाण' कहता हू।

यह जानकर जो स्मृतिमान् लोग इसी जन्म में परिनिर्वाण प्राप्त कर लेते हैं, वे मार के (विषय के) वश नही होते, वे मार का अनुसरण नहीं करते।

●

११. प्रश्न—इस जगत् में लोग अनेकों को मुनि कहते हैं, पर क्या उनका यह कहना ठीक है ? वे ज्ञानसम्पन्न पुरुषों को मुनि कहते हैं या केवल व्रतादि उपजीविका-सम्पन्न को ?

उत्तर—दृष्टि से, श्रुति से अथवा ज्ञान से कोई मुनि नहीं होता, ऐसा पडितजन कहते है। मन के समस्त विरोधों का नाश करके जो निर्दुःख और निस्तृष्ण होकर रहता है उसे ही मै मुनि कहता हूं।

१२. प्रश्न—(१) इस जगत् मे किसे सतुष्ट कहना चाहिए ?

(२) तृष्णाएं किसे नही हैं ?

(३) कौन दोनों अंतों को जानकर मध्य में स्थित हो प्रज्ञा से लिप्त नहीं होता ?

(४) 'महापुरुष' किसे कहते हैं ?

(५) इस जगत् मे कौन तृष्णा को पार करता है ?

उत्तर—(१) जो कामोपभोगो का परित्याग करके ब्रह्मचारी, वीततृष्ण और सदैव स्मृतिमान् रहता है, उसे ही सन्तुष्ट कहना चाहिए।

(२) उसे ही तृष्णाए नही सताती।

(३) वह दोनो अंतो को जानकर मध्य मे स्थित हो प्रज्ञा से लिप्त नही होता।

(४) उसे ही मै महापुरुष कहता हू ?

(५) इस जगत् मे वही महापुरुष तृष्णा-तरगिणी को पार कर सकता है।

१३ प्रश्न—इस जगत् मे जो ये अनेक तरह के दुःख दिखाई देते है, वे कहा से उत्पन्न होते है ?

उत्तर—ये दुःख उपाधियो से उत्पन्न होते है। जो अविद्वान् मंदबुद्धि मनुष्य उपाधिया करते हे वे बारबार दुःख भोगते हैं। अतएव दुःख का उत्पत्ति-कारक जाननेवाले बुद्धिमान मनुष्य को उपाधि नही करनी चाहिए।

१४. प्रश्न—बुद्धिमान् मनुष्य किस तरह ओघ (भवसागर), जन्म, जरा, शोक, परिदेव और दुःख को पार करते है।

उत्तर—ऊपर, नीचे, चारो ओर और मध्य मे जो कुछ भी दिखाई देता है, उसमें से तृष्णा, दृष्टि और विज्ञान (चित्तधारा) को हटा देनेवाला पुरुष संसार पर आश्रय नही रखता।

इस प्रकार चलनेवाला स्मृतिमान्, अप्रमत्त और विद्वान् भिक्षु ममत्व को छोड़कर इसी लोक मे जन्म, जरा, शोक, परिदेव और दुःख का त्याग कर देता है।

जो ब्राह्मण वेदपारग, अकिचन और कामभव में अनासक्त होगा, वह इस ससार-सागर को विश्वासपूर्वक पार कर सकेगा।

इस जगत् में वही विद्वान् और वेदपारग मनुष्य है, वही भव और

अभव में आसक्ति का त्याग कर सकता है, वही निस्तृष्ण, निर्दुःख और वासना-रहित है और वही जन्म, जरा और मृत्यु को पार कर सकता है।

●

१५. प्रश्न—किस हेतु से प्रेरित हो ऋषि, क्षत्रिय, ब्राह्मण और अन्य मनुष्य इस जगत् में देवताओं को उद्देश करके भिन्न-भिन्न यज्ञ करते है?

उत्तर—ये सब इसलिए भिन्न-भिन्न यज्ञ करते है कि उनका पुनर्जन्म हो और बार-बार जन्म और मरण के ग्रास बने।

१६. प्रश्न—यज्ञ-कर्म में अप्रमादी रहकर क्या ये लोग जन्म और जरा को पार कर सकते हैं?

उत्तर—ये लोग देवताओं की प्रार्थना करते हैं, स्तुति करते है, आशा प्रकट करते हैं, हवन करते हैं और अपने लाभ के लिए कामसुख की याचना करते हैं। यज्ञ में फंसे हुए ये भवलोभासक्त मनुष्य जन्म और जरा को कदापि पार नहीं कर सकते।

१७. प्रश्न—तो फिर देवलोक और नरलोक में कौन मनुष्य जन्म और जरा को पार कर सकता है?

उत्तर—ससार की छोटी-बडी सभी वस्तुओं को प्रज्ञा से जानकर जिस मनुष्य ने अपनी तमाम तृष्णाएं नष्ट कर दी हैं, जो शान्त, वीतधूम, रागादि-विरत और आशा-रहित है, वही जन्म और जरा को पार कर सकता है।

१८. प्रश्न—राग और दोष कहा उत्पन्न होते हैं? अरति, रति और हर्ष कहा पैदा होते हैं?

मन में वितर्क कहा से होता है, जिससे यह मन उस पतंग के समान मंडराता रहता है, जिसे बालक इधर-उधर उडाया करते हैं?

उत्तर—यही आत्मा राग और दोष का निदान है। इसीसे अरति, रति और हर्ष उत्पन्न होते हैं। इसीसे मन में वितर्क उत्पन्न होता है। यह उस पतंग के अनुसार है, जिसे अबोध बालक इधर-उधर उड़ाया

करते हैं। ये राग आदि स्नेह से आत्माम न्यग्रोध(वरगद)के स्कध के समान उत्पन्न होते हैं और कामों मे 'मालू' नामक लता की भाति लपटते है।

जो इनका निदान जानते हैं वे आनन्द-लाभ करते हैं; और इस संसार-समुद्र को, जो अत्यंत दुस्तर है, पार करके निर्वाण प्राप्त कर लेते हैं; और उनका पुनर्जन्म नहीं होता।

१९. प्रश्न—(१) श्रेष्ठ धन कौन-सा है?
(२) सुचिर सुख देनेवाला कौन?
(३) जगत् मे अत्यन्त स्वादिष्ट पदार्थ कौन है?
(४) किस प्रकार का जीवन व्यतीत करनेवाला श्रेष्ठ पुरुष है?

उत्तर—(१) श्रद्धा ही श्रेष्ठ धन है।
(२) धर्म ही सुचिर सुख देनेवाला है।
(३) सत्य ही संसार मे स्वादिष्ट पदार्थ है।
(४) प्रज्ञा से जीवन-निर्वाह करनेवाला पुरुष ही ससार मे श्रेष्ठ है।

२०. प्रश्न—(१) ओघ को कैसे पार कर सकते हैं?
(२) मृत्यु-महोदधि के उस पार किसके सहारे जा सकते है?
(३) दुःख का अन्त किससे कर सकते है?
(४) परिशुद्धि किससे होती है?

उत्तर—(१) श्रद्धा से ओघ को पार कर सकते हैं।
(२) अप्रमाद के सहारे मृत्यु-महोदधि के उस पार जा सकते हैं।
(३) वीर्य (उद्योग) से दुःख का अत हो सकता है।
(४) और, प्रज्ञा से परिशुद्धि प्राप्त हो सकती है।

२१. प्रश्न—(१) प्रज्ञा किससे प्राप्त होती है?
(२) धन किससे मिलता है?

(३) कीर्ति किससे प्राप्त होती है ?

(४) किस प्रकार इस लोक से परलोक पहुँचकर मनुष्य शोक नहीं करता ?

उत्तर—(१) श्रद्धावान् प्रमाद-विरहित कुशल पुरुष निर्वाण की प्राप्ति के लिए आर्हत धर्म की परिसेवा से (उपासना) प्रज्ञा प्राप्त करता है।

(२) प्रत्युपकारी सहनशील पुरुष अप्रमाद के द्वारा विपुल धन प्राप्त करता है।

(३) सत्य से वह कीर्ति-लाभ करता है।

(४) जिस गृहस्थ में सत्य, धर्म, धृति और त्याग, ये चार धर्म होते हैं, वही इस लोक से परलोक में जाकर शोक नहीं करता।

२२. प्रश्न—(१) किन गुणों के प्राप्त करने से मनुष्य भिक्षु होता है ?

(२) भिक्षु सुशांत कैसे होता है ?

(३) दांत किसे कहते है ?

(४) बुद्ध के क्या लक्षण हैं ?

उत्तर—(१) जो बुद्ध के सुझाये हुए मार्ग से परिनिर्वाण प्राप्त करता है, जिसे कोई शंका नहीं रहती, जो शाश्वत दृष्टि और उच्छेद-दृष्टि का त्याग करके कृतकृत्य हो जाता है और पुनर्जन्म का क्षय कर देता है, वही भिक्षु है।

(२) जो हर जगह उपेक्षायुक्त और स्मृतिमान् होकर इस अखिल जगत् में किसीकी भी हिंसा नहीं करता, जो उत्तीर्ण और विमुक्त होगया है, और जिसमें न राग रहा है न द्वेष, वही सुशांत है।

(३) इस अखिल जगत् मे जिसकी इंद्रिया बाहर से तथा भीतर से वश मे होगई है और जो भावितात्मा पुरुष उत्तम लोको को जानकर मृत्यु की प्रतीक्षा करता है, वही दांत है ।

(४) समस्त विकल्प, ससार तथा जन्म-मरण को जानकर और विगतरज, निष्पाप एव विशुद्ध होकर जो जन्मक्षय का लाभ करता है उसे बुद्ध कहते ह ।

२३. प्रश्न—(१) मनुष्य किन गुणो की प्राप्ति से ब्राह्मण होता है?

(२) मनुष्य श्रमण कैसे होता है?

(३) स्नातक के क्या लक्षण हैं?

(४) नाग किसे कहते हैं?

उत्तर—(१) जो मनुष्य समस्त पापो को हृदय से निकाल बाहर कर देता है, जो विमल, समाहित और स्थिरात्मा होकर संसार-सागर को लाघ जाता है, जो 'केवली' और अनाश्रित होता है, उसे ब्राह्मण कहते हैं ।

(२) पुण्य और पापो को त्यागकर जो पुरुष शात हो गया है, इहलोक और परलोक दोनो को जानकर जो विगतरज होगया है और जो जन्म तथा मरण के उस पार चला गया है, उसे श्रमण कहते हैं ।

(३) जो समस्त जगत् मे बाहर और भीतर से तमाम पापों को पखारकर विकल्पबद्ध देवताओ और मनुष्यो के बीच विकल्प प्राप्त नही होता, उसे स्नातक कहते हैं ।

(४) जो इस जगत् मे एक भी पाप नही करता और

सभी संयोगों और बंधनों को तोड़कर कहीं भी बद्ध नहीं होता, उस पुरुष को इन गुणों के कारण **नाग** कहते हैं।

२४. प्रश्न—(१) **क्षेत्रजिन** किसे कहते हैं?

(२) मनुष्य **कुशल** कैसे होता है?

(३) **पंडित** के क्या लक्षण हैं?

(४) **मुनि** किसे कहते हैं?

उत्तर—(१) दिव्य, मानवी और ब्रह्मक्षेत्र—इन तीनों क्षेत्रों को जानकर जो तीनों के बंधन से मुक्त होगया है, उसे **क्षेत्रजिन** कहते हैं।

(२) दिव्य, मानवी और ब्रह्मकोश—इन तीनों कोशों को जानकर जो तीनों के बंधन से मुक्त होगया है, उसे **कुशल** कहते हैं।

(३) आध्यात्मिक (चक्षु, श्रोत्र, घ्राण, जिह्वा, काय, मन) और बाह्य आयतनों को (रूप, शब्द, गंध, रस, स्पर्श, धर्म) जानकर जो विशुद्धप्रज्ञ मनुष्य पाप और पुण्य के उस पार चला गया है, उसे **पंडित** कहते हैं।

(४) अखिल लोक में अध्यात्मविषयक और बाह्य-विषयक तथा साधुओं और असाधुओं का धर्म जानकर जो आसक्ति के उस पार चला गया है, उसे **मुनि** कहते हैं। उसकी पूजा मनुष्य क्या, देवता भी करते हैं।

२५. प्रश्न—(१) किन गुणों की प्राप्ति से मनुष्य **वेदपारग** कहलाता है?

(२) मनुष्य **अनुविदित** कैसे होता है?

(३) **वीर्यवान** के क्या लक्षण हैं?

(४) मनुष्य **आजन्य** कैसे होता है ?

उत्तर—(१) श्रमण और ब्राह्मणो के जितने वेद हैं उन सबको जानकर और उन्हे पार करके जो समस्त वेदनाओ के विषय मे वीतराग हो जाता है, वह **वेदपारग** है ।

(२) भीतर और बाहर से रोगो का मूल यह संसार नामरूप है, अत सर्व रोगो के मूल बंधन से जो मुक्त हो जाता है उसे **अनुविदित** कहते है ।

(३) जो इस लोक में समस्त पापो से विरत होगया और जिसने निरय-दुःख को पार कर लिया है, वह **वीर्यवान्** है; इन गुणो के कारण ही उसे **वीर्यवान्**, **प्रधानवान्** (प्रयत्नवान्) और **धीर** कहते हैं ।

(४) भीतर और बाहर के समस्त संगकारण को तोड-कर जो सभी प्रकार की आसक्ति के बंधन से मुक्त होगया है उसे, इन गुणो के कारण, **आजन्य** कहते हैं ।

२६. प्रश्न—(१) किन गुणों को प्राप्त करके मनुष्य **श्रोत्रिय** होता है ?

(२) मनुष्य **आर्य** किन गुणो से होता है ?

(३) मनुष्य **आचरणवान्** कैसे होता है ?

(४) **परिव्राजक** किसे कहते हैं ?

उत्तर—(१) जितने भी निंदित और अनिंदित धर्म हैं उन सबको सुनकर और जानकर जो मनुष्य उनपर विजय प्राप्त करके निःशंक, विमुक्त और सर्वथा

निर्दःख हो जाता है, उसे **श्रोत्रिय** कहते हैं।

(२) जो विद्वान् मनुष्य आस्रवों और आलयों का उच्छेद करके गर्भवास की जड़ काट डालता है, और जो त्रिविध (काम, रूप और अरूप) पंकमय संज्ञा को लाँघकर विकल्प को प्राप्त नहीं होता वह **आर्य** है।

(३) जिसने आचरण में पूर्णत्व कर लिया है, जिसे कुशल धर्मों का पूर्णज्ञान है, और जो कहीं भी बद्ध नहीं होता, जो विमुक्त है और जिसमें प्रत्याघातबुद्धि का सर्वथा अभाव है, वह **आचरणवान्** है।

(४) ऊपर, नीचे और चारों ओर अथवा मध्य में जितने भी दुःखकारक कर्म हैं, उन्हें त्यागकर जो विचारपूर्वक बर्तता है, जिसने माया, मान, क्रोध और नामरूप को नष्ट कर दिया है उस पूर्णत्व-प्राप्त पुरुष को **परिव्राजक** कहते हैं।

२७ प्रश्न—कलह और विवाद तथा परिदेव, शोक और मत्सर कहां से उत्पन्न होते हैं? और अहंकार, अतिमान तथा कलंक का उत्पत्ति-स्थान क्या है?

उत्तर—कलह और विवाद तथा परिदेव, शोक और मत्सर एव अहंकार, अतिमान तथा कलक का उत्पत्ति-स्थान प्रिय वस्तुएं हैं।

२८. प्रश्न—(१) इस जगत् में वस्तुएं प्रिय कैसे होती हैं।

(२) यह लोभ किससे पैदा होता है?

(३) लोगों के लड़ाई-झगड़ों की जड़ यह आशा और निष्ठा किससे उत्पन्न होती है?

उत्तर—(१) इस जगत् में राग (छंद) के कारण वस्तुएं

प्रिय होती हैं।

(२) राग की बदौलत यह लोभ पैदा होता है।

(३) यह राग ही तमाम लडाई-झगड़ो की जड, आशा और निष्ठा का जनक है।

२९. प्रश्न—(१) जगत् मे राग कहा से उत्पन्न होता है?

(२) योजनाएं कहा से उत्पन्न होती हैं?

(३) क्रोध, लुच्चाई, कुशका और दूसरे दोष कहा से पैदा होते हैं?

उत्तर—(१) जगत् मे जिन्हें सुख और दुःख कहते हैं, उन्हीं-से राग पैदा होता है।

(२) रूपो में हानि और लाभ देखकर जगत् में मनुष्य योजनाएं बनाया करता है।

(३) क्रोध, लुच्चाई, कुशंका और दूसरे दोष भी सुख-दुःख के ही कारण उत्पन्न होते हैं।

३०. प्रश्न—(१) सुख और दुःख होने का क्या कारण है?

(२) किन वस्तुओ के नष्ट हो जाने से सुख-दुःख उत्पन्न नहीं होते?

(३) लाभ और हानि का उत्पत्ति-स्थान क्या है?

उत्तर—(१) सुख और दुःख का कारण स्पर्श है। स्पर्श से ही ये सुख-दुःख पैदा होते हैं।

(२) स्पर्श न हो तो ये भी पैदा न हो।

(३) लाभ और हानि का भी उत्पत्ति-स्थान यह स्पर्श ही है।

३१. प्रश्न—(१) जगत् मैं स्पर्श कहा से पैदा होता है?

(२) परिग्रह किससे उत्पन्न होता है?

(३) और, किसके नाश से यह स्पर्श उत्पन्न नहीं होता?

उत्तर—(१) नाम और रूपके आश्रय से स्पर्श होता है।
(२) इच्छा के कारण परिग्रह उत्पन्न होता है। यदि इच्छा नष्ट होजाय, तो फिर ममत्व न रहे।
(३) रूप-विचार नष्ट हो जाने से स्पर्श उत्पन्न नहीं होता है।

३२. प्रश्न—(१) रूप-विचार किन गुणों के युक्त होने से नष्ट होता है?
(२) सुख और दुःख का नाशक क्या है?
(३) इनका कैसे नाश होता है?

उत्तर—इन प्रश्नो का एक ही उत्तर है। जो सज्ञा का[1] विचार नही करता, अथवा असज्ञा का भी विचार नहीं करता, जो असज्ञी भी नहीं, और रूपसज्ञी भी नहीं, उसका रूप-विचार नष्ट हो जाता है। कारण यह है कि प्रपंच की कल्पना इस सज्ञा से ही पैदा होती है।

३३. प्रश्न—(१) मुनि के क्या लक्षण हैं?
(२) केवली किसे कहते हैं?
(३) मनुष्य बुद्ध कैसे होता है?

उत्तर—(१) जो पूर्वजन्मो को तथा स्वर्ग और नरक को जानता है, जिसका जन्मक्षय होगया है, और जो अभिज्ञा-तत्पर है, वही मुनि है।
(२) रोगो से जो सर्वथा मुक्त है जो चित्त की विशुद्धि को जानता है, जिसका जन्म-मरण नष्ट और ब्रह्मचर्य पूर्ण होगया है, उसे केवली कहते हैं।

---

१ इंद्रिय और विषय के एकसाथ मिलने पर, अनुकूल-प्रतिकूल वेदना के बाद, यह अमुक विषय है, इस प्रकार का जो ज्ञान होता है उसे संज्ञा कहते हैं।

(३) जिसने समस्त धर्मों को पार कर लिया है, उसे बुद्ध कहते है।

---

१. अं. नि (३: ३: ६) २—१७. सु. नि. (पारायण वग्ग) १८—१९. बुद्धदेव (ना. प्र. का.) २०—२१. सु. नि. २२—२६. सु. नि. (सभिय सुत्त) २७—३२. सु. नि (कलहविवाद सुत्त) ३३. म. नि. (ब्राह्मण सुत्तंत)

अंतिम उपदेश

१. भिक्षुओ ! जहातक तुम लोग बराबर एकत्र होकर संघ का कार्य करते रहोगे, जबतक तुममे ऐक्य रहेगा, ऐक्य से तुम संघ के सब कृत्य करते रहोगे, जहातक सघ के किसी नियम का भंग नही करोगे, जहातक तुम अपने सघ के वृद्ध भिक्षुओं को मान देते रहोगे, जहातक तुम अपनी तृष्णा की अधीनता स्वीकार न करोगे, जहातक तुम एकातवास में आनन्द मानोगे, और जबतक तुम इस बात की चिता रखोगे कि तुम्हारे सब साथी सुखी रहे, तवतक तुम्हारी उत्तरोत्तर उन्नति होती जायगी; अवनति नहीं।

२. भिक्षुओ ! अभ्युन्नति के ये सात नियम मैं बता देता हू, इन्हें ध्यानपूर्वक सुनो :

(१) गृहसम्बन्धी निजी काम में आनन्द न मानना ;
(२) व्यर्थ की बकवाद करने में आनन्द न मानना ;
(३) निद्रा में समय बिताने में आनन्द न मानना ;
(४) भीडभाड पसन्द करनेवाले भिक्षुओं के साथ समय बिताने में आनन्द न मानना ;
(५) दुर्वासनाओं के वश न होना ;
(६) दुष्टो की सगति में न पड़ना ;
(७) समाधि में अल्प सफलता पाकर उसे बीच में ही न छोड़ देना।

३. भिक्षुओ ! अभ्युन्नति के और भी सात नियम कहता हूँ, उन्हें सुनो :

(१) श्रद्धालु बने रहना ;

(२) पाप-कर्म से लजाते रहना;
(३) लोकापवाद का भय रखना;
(४) विद्या का संचय करना;
(५) सत्कर्म करने में उत्साह रखना;
(६) स्मृति को जाग्रत बनाये रखना;
(७) प्रज्ञावान रहना।

४. शीलभ्रष्ट मनुष्य की पांच प्रकार से हानि होती है :
(१) दुराचरण से उसकी सम्पत्ति का नाश होता है;
(२) उसकी अपकीर्ति फैलती है;
(३) किसी भी सभा में उसका प्रभाव नहीं पड़ता;
(४) शांति से वह मृत्यु नहीं पाता;
(५) मरने के बाद वह दुर्गति को प्राप्त होता है।

५. सदाचारी मनुष्य को, उसके सदाचरण के कारण, यह पांच प्रकार का लाभ होता है :
(१) सदाचरण से उसकी सम्पत्ति की वृद्धि होती है;
(२) लोक में उसकी कीर्ति बढ़ती है;
(३) हरेक सभा में उसका प्रभाव पड़ता है;
(४) शांति से वह मृत्यु पाता है;
(५) मरने के बाद वह सुगति को प्राप्त होता है।

●

६. अब तुम लोग अपनेको ही अपना अवलंबन बनाओ। इस संसार-समुद्र में अपनेको ही द्वीप बनाओ, धर्म को अपना द्वीप बनाओ। अपनी ही शरण जाओ, और धर्म की शरण में जाओ।

जो पुरुष मैत्री, मुदिता, करुणा और उपेक्षा, इन चार स्मृत्युपस्थानों की भावना करता है, वह अपने लिए द्वीप बना लेता है; यही धर्म-शरण है।

७. भिक्षुओ ! तुम्हारा ब्रह्मचर्य चिरस्थायी रहे, और तुम्हें ऐसा अनुभव होता हो कि तुम्हारे उस ब्रह्मचर्य के द्वारा बहुत-से लोगों का कल्याण हो, बहुत-से लोगों को सुख मिले, तो मेरे सिखाये हुए 'कुशल धर्म' का सम्यक् रीति से अध्ययन और उसकी शुद्ध भावना करो।

●

८. जो मनुष्य मेरे उपदेश के अनुसार सावधानी के साथ धर्म का आचरण करेगा, पुनर्जन्म से छुटकारा पा जायगा, उसका दुःख नष्ट हो जायगा।

९. मेरे परिनिर्वाण-पश्चात् मेरे शरीर की पूजा करने की माथा-पच्ची में न पड़ना। मैंने तुम्हे जो सन्मार्ग बताया है; उसके अनुसार चलने का प्रयत्न करना।

●

१०. तुम्हारे मन मे विचार आ सकता है कि बुद्ध के देहावसान के बाद हमारा कोई शास्ता (शासनकर्ता) नहीं रहा; पर मेरे न रहने के बाद मैंने तुम्हें जिस धर्म और विनय की शिक्षा दी है वही तुम्हारा शास्ता होगा।

●

११. मै तुमसे कहता हू कि संस्कार अर्थात् कृतवस्तु नाशवन् है, अतः सावधानी के साथ जीवन के लक्ष्य का संपादन करो।

१—११. दी. नि. (महापरिनिब्बाण सुत्त)

: ३१ :

सूक्ति-कण

१. दूसरो की त्रुटियों या कृत्य और अकृत्यो की खोज में न रहो। तुम तो अपनी ही त्रुटियों और कृत्य-अकृत्यो पर विचार करो।

●

२. उस काम का करना अच्छा नहीं, जिसे करके पीछे पछताना पडे, और जिसका फल रोते-बिलखते भोगना पडे।

●

३. उसी काम का करना ठीक है, जिसे करके पीछे पछताना न पड़े, और जिसका फल मनुष्य प्रसन्न चित्त से ग्रहण करे।

●

४. पाप-कर्म दूध की तरह तुरन्त नहीं जम जाता, वह तो भस्म से ढकी हुई आग की तरह थोड़ा-थोड़ा जलकर मूढ़ मनुष्य का पीछा करता है।

●

५. जैसे महान् पर्वत हवा के झकोरों से विकंपित नहीं होता, वैसे ही बुद्धिमान् लोग निंदा और स्तुति से विचलित नहीं होते।

●

६. वही पुरुष शीलवान् और धार्मिक है, जो न अपने लिए और न दूसरे के लिए पुत्र, धन आदि की इच्छा करता है, और जो अधर्म से अपनी समृद्धि नहीं चाहता।

●

७. सहस्रों अनर्थक वाक्यों से एक सार्थक पद श्रेष्ठ है, जिसे सुनकर शांति प्राप्त होती है।

सहस्रों अनर्थक गाथाओं से वह एक सार्थक गाथा श्रेष्ठ है, जिसे सुनकर शाति प्राप्त होती है।

८. जो अभिवादनशील और सदा वृद्धों की सेवा करनेवाले हैं, उनके ये चारों धर्म बढ़ते हैं—आयु, वर्ण, सुख और बल।

९. एक दिन का सदाचारयुक्त और ज्ञानपूर्वक जीना सौ वर्ष के शीलरहित और असमाहित जीवन से अच्छा है।

●

१० यह समझकर पापी की अवहेलना न करे कि 'वह मेरे पास नही आयेगा'। एक-एक बूद पानी से घडा भर जाता है। इसी तरह मूर्ख मनुष्य अगर थोडा-थोड़ा भी पाप संचय करता है तो वह एक दिन पाप-समुद्र मे डूब जाता है।

●

११ जो शुद्ध, पवित्र और निर्दोष पुरुष को दोष लगाता है उस मूर्ख को उसका पाप लौटकर लगता है, जैसे वायु के रुख फेकी हुई धूल अपने ऊपर सहज ही आ पडती है।

●

१२. मनुष्य स्वयं ही अपना स्वामी है; दूसरा कौन उसका स्वामी या सहायक हो सकता है? अपनेको जिसने भली-भाति दमन कर लिया, वह ही एक दुर्लभ स्वामित्व प्राप्त कर लेता है।

●

१३ अनुचित और अहितकर कर्मों का करना आसान है। हितकर और शुभ कर्म परम दुष्कर हैं।

१४. जो पहले प्रमाद में था, और अब प्रमाद से निकल गया, वह इस लोक को मेघ-माला से उन्मुक्त चंद्रमा की भांति प्रकाशित करता है।

●

१५. जो अपने किये हुए पापों को पुण्य से ढक देता है, वह इस लोक को इस प्रकार प्रकाशित करता है जैसे बादलों से उन्मुक्त चंद्रमा।

●

१६ जिसने एक इस धर्म को छोड़ दिया है, जो झूठ बोलता है, और जो परलोक का ख्याल नही करता, उसके लिए कोई भी पाप अकरणीय नहीं ।

१७. श्रेष्ठ पुरुष का पाना कठिन है। वह हर जगह जन्म नहीं लेता। धन्य है वह सुखसम्पन्न कुल, जहा ऐसा धीर पुरुष उत्पन्न होता है।

●

१८. विजय से वैर पैदा होता है; पराजित पुरुष दुःखी होता है। जो जय और पराजय को छोड़ देता है, वही सुख की नींद सोता है ।

●

१९. राग के समान कोई आग नहीं; द्वेष के समान कोई पाप नहीं। पंचस्कंधो (रूप, वेदना, सज्ञा, संस्कार और विज्ञान) के समान कोई दुःख नहीं, और शाति के समान कोई सुख नही।

●

२०. भूख सबसे बड़ा रोग है; शरीर सबसे बड़ा दुःख है—इस बात को अच्छी तरह समझ लेना चाहिए। यथार्थ में निर्वाण ही परम सुख है।

●

२१ आरोग्य परम लाभ है। संतोष परम धन है। विश्वास परम-बंधु है। और निर्वाण परमसुख है।

●

२२. सत्पुरुषो का दर्शन अच्छा है। संतो के साथ रहना सदा सुख-कारक है। मूर्खों के अदर्शन से (अलग रहने से) मनुष्य सचमुच सुखी रहता है।

●

२३. मूर्खों की सगति में रहनेवाला मनुष्य चिरकाल तक शोकनिमग्न रहता है। मूर्खों की सगति शत्रुओं की तरह सदा ही दुःखदायक

होती है, और धीर पुरुषों का सहवास अपने बंधु-बांधवों के समागम के समान सुखदायी होता है।

●

२४. सदा सच बोलना, क्रोध न करना और याचक को यथेच्छ दान देना—इन तीनों बातों से मनुष्य देवताओं के निकट स्थान पाता है।

२५. यह पुरानी बात है, कुछ आज की नहीं कि, नहीं बोलता उसकी भी लोग निंदा करते हैं, और जो बहुत बोलता है उसे भी दोष लगाते हैं। इसी तरह मितभाषी की भी लोग निंदा करते हैं। संसार में ऐसा कोई नहीं, जिसकी लोग निंदा न करें। बिल्कुल ही निंदित और बिल्कुल ही प्रशंसित पुरुष न कभी हुआ, न होगा और न आजकल है।

●

२६. काया को उद्विग्न होने से बचा; काया पर दमन कर; काया के दुश्चरित को छोड़; वाणी के सुचरित का आचरण कर।

●

२७. वाणी को उद्विग्न होने से बचा; वाणी को संयत रख; वाणी के दुश्चरित को छोड़; वाणी के सुचरित का आचरण कर।

●

२८. मन को उद्विग्न होने से बचा; मन को वश में कर; मन के दुश्चरित को छोड़; मन के सुचरित का आचरण कर।

●

२९. राग के समान कोई आग नहीं; द्वेष के समान कोई अरिष्ट ग्रह नहीं; मोह के समान कोई जाल नहीं; और तृष्णा के समान कोई नदी नहीं।

●

३०. जैसे सुनार चांदी के मैल को दूर करता है, उसी तरह बुद्धिमान् पुरुष को चाहिए कि वह अपने मलों (पापों) को प्रतिक्षण थोड़ा-थोड़ा दूर करता रहे।

●

३१ यह लोहे का मुरचा ही है जो लोहे को खा जाता है। इसी प्रकार पापी के पाप-कर्म ही उसे दुर्गति को पहुंचाते हैं।

३२ उपासना का मुरचा अनभ्यास है। मकान का मुरचा उसकी बेमरम्मती है। शरीर का मुरचा आलस्य है, और संरक्षक का मुरचा प्रमाद है।

३३. जो प्राणियों की हिंसा करता है, जो झूठ बोलता है; जो संसार में न दी हुई चीज़ को उठा लेता है अर्थात् चोरी करता है, जो पराई स्त्री के साथ सहवास करता है, जो शराब पीता है, वह मनुष्य लोक में अपनी जड़ आप ही खोदता है।

●

३४. दूसरे का दोष देखना आसान है; किंतु अपना दोष देखना कठिन है। लोग दूसरे के दोषों को भुस के समान फटकते फिरते हैं, किंतु अपने दोषों को इस तरह छिपाते हैं, जैसे चतुर जुआरी हारनेवाले पासे को छिपा लेता है।

●

३५. जो दूसरो के दोषों को सदा ही देखा करता है और हमेशा हाय-हाय किया करता है, उसकी वासनाएं बढ़ती ही जाती हैं, और वह उनका नाश नहीं कर सकता।

●

३६. बहुत बोलने से कोई पंडित नहीं होता। जो क्षमाशील वैर-रहित और अभय होता है, वही पंडित कहा जाता है।

●

३७. वह धर्मधर नहीं जो बहुत बोलता है। वही धर्मधर है और वही धर्मविषयों में अप्रमादी है, जिसने चाहे थोड़ा ही धर्म सुना हो पर जो धर्म का ठीक-ठीक आचरण करता है।

●

३८. यदि किसीके सिर के बाल पक जायं, तो इससे वह स्थविर

या बडा नही हो जाना। उसकी उम्र भले ही पक गई हो, किंतु वह व्यर्थ ही वृद्ध कहा जाता है।

●

३९. बडा असल में वही है, जिसमें सत्य, धर्म, अहिंसा, सयम और दम है, जो मल से रहित और धीर है।

४०. जो पुरुष ईर्ष्यालु, मात्सर्ययुक्त और शठ है, वह बहुत बोलने या सुन्दर रंग-रूप के कारण साधु नही हो सकता।

●

४१. साधु वही है, जिसके दोष जड़मूल से नष्ट होगये हैं। जो विगत-दोष और मेधावी है, वही साधु है।

●

४२. अनियमित और मिथ्याभाषी मनुष्य मंड मुंड़ानेमात्र से ही भिक्षु नहीं हो जाता। क्या ऐसा मनुष्य भिक्षु हो सकता है, जो वासना और लोभ से युक्त हो ?

●

४३. वही असल में भिक्षु है, जिसने छोटे-बडे सब पाप त्याग दिये हैं। जिसके पाप शमित होगये हैं, वही श्रमण कहा जाता है।

●

४४. भिक्षा मागनेमात्र से कोई भिक्षु नहीं होता। भिक्षु वही होता है, जो धर्मानुकूल आचरण करता है।

●

४५. जो पाप और पुण्य से ऊंचा उठकर ब्रह्मचारी बन गया है, जो लोक में धर्म के साथ विचरता है, उसीको भिक्षु कहना चाहिए।

●

४६. अज्ञानी और मूढ़ मनुष्य केवल मौन से मुनि नहीं हो जाता। वही मनुष्य मुनि है, जो तराजू की तरह ठीक-ठीक जांच करके सुव्रतों का

ग्रहण और पापों का त्याग करता है। जो दोनों लोकों का मनन करता है वही सच्चा मुनि है।

●

४७. जो प्राणियों की हिंसा करता है वह आर्य नहीं। समस्त प्राणियों के साथ जो अहिंसा का बर्ताव करता है वही आर्य है।

●

४८ यदि थोड़ा सुख छोड़ देने से विपुल सुख मिलता हो तो बुद्धिमान् पुरुष विपुल सुख का खयाल करके उस थोड़े-से सुख को छोड़ दे।

●

४९. दूसरे को दुःख देकर जो अपना सुख चाहता है, वह वैर के जाल में फंसकर उससे छूट नहीं सकता।

●

५० ऐसे ही उन्मत्त और प्रमत्त लोगों के आस्रव (चित्त के मल) बढ़ते हैं, जो कर्त्तव्य को छोड़ देते हैं और अकर्त्तव्य को करते हैं।

●

५१. जो शरीर की अनित्य गति को विचारते हैं, जो अकर्त्तव्य से दूर रहते और कर्त्तव्य कृत्य को करते हैं, उन ज्ञानी सत्पुरुषों के आस्रव अस्त हो जाते हैं।

●

५२. श्रद्धावान्, शीलवान्, यशस्वी और धनी पुरुष जिस देश में जाता है, वहा वह पूजा जाता है।

●

५३. हिमालय के धवल शिखरों के समान संतजन दूर से ही प्रकाशते हैं। और, असन्त लोग इस तरह अदृष्ट रहते है, जैसे रात में छोड़ा हुआ बाण।

●

५४. काषाय वस्त्र पहननेवाले बहुत-से पापी और असंयमी मिलेंगे।

ये सब अपने पाप-कर्म के द्वारा नरकलोक को जायगे।

●

५५. असयमी और दुराचारी मनुष्य राष्ट्र का अन्न व्यर्थ खाये इससे तो आग मे गरम किया हुआ लोहे का लाल गोला खा जाय वह अच्छा।

●

५६. परस्त्री-गमन करने से अपुण्य-लाभ, बुरी गति, भयभीत(पुरुष) की भयभीत (स्त्री) मे अत्यल्प रति, यही मिलता है। इसलिए मनुष्य को परस्त्रीगमन नही करना चाहिए।

५७. जैसे असावधानी से पकड़ा हुआ कुश हाथ को काट देता है, उसी तरह असावधानी के साथ संन्यास ग्रहण करने से मनुष्य को नरक की प्राप्ति होती है।

●

५८. दुष्कृत का (पाप) न करना ही श्रेयस्कर है, क्योंकि दुष्कृत करनेवाले को पीछे पछताना पड़ता है। सुकृत का करना ही श्रेष्ठ है, जिससे मनुष्य को अनुताप न करना पड़े।

●

५९. मुनि को गाव में इस प्रकार विचरना चाहिए, जिस प्रकार भौंरा फूल के रंग और सुगंध को न बिगाड़ता हुआ उसके रस को लेकर चल देता है।

●

६०. कोई भी सुगंध, चाहे वह चंदन की हो, चाहे तगर की या चमेली की, वायु से उलटी ओर नहीं जाती। किंतु सत्पुरुषों की सुगंध वायु से उलटी ओर भी जाती है। सत्पुरुषों की सुगंध सभी दिशाओं को सुवासित करती है।

●

६१. चन्दन या तगर, कमल या जही इन सबकी सुगन्ध से सदा-

चार की सुगन्ध श्रेष्ठ है ।

●

६२. तगर और चन्दन की जो गंध है वह अल्पमात्र है, और जो सदाचारियो की उत्तम गध है, वह देवताओं तक पहुचती है ।

●

६३. चाहे कितनी ही धर्मसंहिताओं का पाठ करे, किन्तु प्रमादी मनुष्य उन सहिताओ के अनुसार आचरण करनेवाला नही होता; अतः वह श्रमण अर्थात् साधु नहीं हो सकता। वह तो उस ग्वाले के समान है, जो दूसरों की गायो को गिनता रहता है ।

६४. जो पुरुष राग-द्वेषादि कषायो (मलो) को बिना छोड़े ही काषाय (गेरुआ) वस्त्र धारण कर लेता है, और जिसमें न संयम है न सत्य, वह काषाय वस्त्र धारण करने का अधिकारी नही ।

६५. जिसने कषायों (मलो) का त्याग कर दिया है, जो सदाचारी, संयमी और सत्यवान है वही काषाय वस्त्र धारण कर सकता है ।

६६. जिस प्रकार कलछी दाल-तरकारी के स्वाद को नहीं समझ सकती, उसी प्रकार मूर्ख मनुष्य सारी जिन्दगी पंडितो की सेवा में रहकर भी धर्म और ज्ञान का रस प्राप्त नहीं कर सकता ।

६७. जिस प्रकार जीभ दाल-तरकारी को चखते ही स्वाद पहचान लेती है, उसी प्रकार विज्ञपुरुष पडितो की सेवा में मुहूर्तमात्र रहकर भी धर्म और ज्ञान को प्राप्त कर लेता है ।

६८. जबतक पाप का परिपाक नहीं होता, तभी तक मूर्ख मनुष्य को वह मधु-सा मीठा लगता है । किन्तु जब पाप-कर्म के फल लगते हैं, तब उस मूर्ख को भारी क्लेश होता है ।

६९. जिसके पास कोई मालमत्ता नहीं, जो संचय करना नहीं जानते, जिनका भोजन नियत है, जिन्हें जगत् शून्यता-स्वरूप दिखाई देता है, और जिन्होंने निर्वाण-पद प्राप्त कर लिया है, उनकी गति उसी प्रकार मालूम नहीं हो सकती, जिस प्रकार आकाश में पक्षियों की गति ।

७०. सौ वर्ष के आलसी और हीनवीर्य जीवन की अपेक्षा एक दिन का दृढ कर्मण्यता का जीवन कही अच्छा है ।

७१ न आकाश मे, न समुद्र मे, न पर्वतो की खोह में कोई ऐसा ठौर है, जहा पापी प्राणी अपने किये हुए पाप-कर्मों से त्राण पा सके ।

७२ बुढापे तक सदाचार का पालन करना सुखकर है । स्थिर श्रद्धा सुखकर है । प्रज्ञा का लाभ सुखकर है । और पाप-कर्मो का न करना सुखकर है ।

७३ जिसने हाथ, पैर और वाणी को संयम में रखा है, वही सर्वोत्तम संयमी है । मै उसीको भिक्षु कहता हू, जो अपने में मस्त है, जो संयत है, एकातसेवी है और सतुष्ट है ।

७४. जिस भिक्षु की वाणी अपने वश में है, और जो थोडा बोलता है, जो उद्यत नही है और धर्म को प्रकाश मे लाता है, उसीका भाषण मधुर होता है ।

७५. न तो अपने लाभ का तिरस्कार करे, और न दूसरो के लाभ की स्पृहा ।

७६. इस नाम-रूपात्मक जगत् मे जिसे बिल्कुल ही ममता नहीं, और जो किसी वस्तु के न मिलने पर उसके लिए शोक नहीं करता, वही सच्चा भिक्षु है ।

७७. ध्यान मे रत रहो, प्रमाद मत करो । तुम्हारा चित्त भोगो के चक्कर में न पडे । प्रमाद के कारण तुम्हे लोहे का लाल-लाल गोला न निगलना पडे । और दुःख की आग से जलते समय तुम्हें यह कहकर क्रन्दन न करना पडे कि 'हाय यह दुःख है' ।

७८. जैसे जूही की लता कुम्हलाये हुए फूलो का त्याग कर देती है, वैसे ही तुम राग और द्वेष को छोड़ दो ।

७९. अपनेको अपने-आप उठा, अपनी आप परीक्षा कर । इस प्रकार तू अपनी आप रक्षा करता हुआ विचारशील हो सुखपूर्वक इस लोक में विहार करेगा ।

८० मनुष्य आप ही अपना स्वामी है, आप ही अपनी गति है। इसलिए तू अपनेको संयम मे रख, जैसे बनिया अपने घोडे को अपने काबू में रखता है।

●

८१. धर्मपूर्वक माता-पिता का भरण-पोषण करे, धर्मपूर्वक व्यवहार और वाणिज्य करे। गृहस्थो को इस प्रकार आलस्य और प्रमाद छोडकर अपना धर्म-पालन करना चाहिए।

●

८२. दुःख का समूल नाश करने के लिए ब्रह्मचर्य का व्रतपालन अत्यन्त आवश्यक है।

●

८३ हंस, क्रौंच, मोर, हाथी और मृग, ये सभी पशु-पक्षी सिंह से भय खाते हैं। कौन शरीर में बड़ा है और कौन शरीर मे छोटा, यह तुलना करना व्यर्थ है।

इसी प्रकार मनुष्यो में बौने शरीर का होते हुए भी यदि कोई प्रज्ञावान् है, तो वही वास्तव में बडा है। भारी भरकम शरीर के होते हुए भी मूर्ख मनुष्य को हम बडा नही कह सकते।

●

८४. ससर्ग होने से स्नेह उत्पन्न होता है। स्नेह से दुःख होता है। यह स्नेह ही दोष है, ऐसा समझकर गैडा के सींग की तरह एकाकी ही रहना चाहिए।

८५. देख, यह आसक्ति है; इसमें सुख थोडा है, आस्वाद कम है, और दुःख अधिक। सावधान! यह मछली फँसाने का आकडा है।

८६. जैसे कोई मनुष्य किसी प्रचंड धार की नदी में उतरकर तैर न सकने के कारण बह जाता है और दूसरों को पार नही उतार सकता, वैसे ही जिस मनुष्य ने धर्मज्ञान का सम्पादन नही किया, और विद्वानो के मुख मे अर्थपूर्ण वचन नहीं सुने, जो स्वयं ही अज्ञान और संशय मे डूबा

हुआ है, वह दूसरों का किस प्रकार समाधान कर सकता है ?

●

८७. समाधान तो वह ज्ञानी पुरुष कर सकता है, जो विद्वान्, संयतात्मा बहुश्रुत तथा अप्रकम्प्य होता है, और जिसने श्रोतावधान के द्वारा निर्वाणज्ञान का सम्पादन किया है।

●

८८ तू तो निष्काम निर्वाण का चितन कर और अहकारी वासना छोड दे। अहंकार त्याग करने पर ही तुझे सुचिर शाति मिलेगी।

८९. जो निदनीय मनुष्य की प्रशंसा अथवा प्रशसनीय पुरुष की निदा करता है, वह अपने ही मुख से अपनी हानि करता है, और इस हानि के कारण उसे सुख प्राप्त नही होता।

●

९०. जुए में धन गवाने से जो हानि होती है वह कम है, किन्तु सत्पुरुषो के सम्बन्ध में अपना मन कलुषित करना तो सर्वस्व-हानि से भी बढकर आत्म-हानि है।

●

९१ मूर्ख मनुष्य दुर्वचन बोलकर खुद ही अपना नाश करते हैं।

●

९२. जो छिछला या छिछोरा होता है वही ज्यादा आवाज करता है, पर जो गंभीर होता है, वह शात रहता है। मूर्ख अधभरे घडे की तरह शोर मचाते हैं, पर प्रज्ञावान गंभीर मनुष्य सरोवर की भाति सदा शात रहते हैं।

९३. जो सयतात्मा पुरुष सबकुछ जानते हुए भी बोलते नहीं हैं, वे ही मुनि मौनव्रत के योग्य हैं।

९४. वह अविद्या ही महान् मोह है, जिसके कारण मनुष्य चिर-काल से संसार में पडा है। किन्तु जो विद्यालाभी प्राणी होता है, वह

बार-बार जन्म नहीं लेता।

९५. जो भी दुःख पैदा होता है, वह सब संस्कारों से ही पैदा होता है; सस्कारों के निरोध से दुःख की उत्पत्ति असंभव हो जाती है।

●

९६. इस सारे प्रपंच का मूल अहंकार है। इसका जड़मूल से नाश कर देना चाहिए। अहकार के समूल नाश से ही अतःकरण मे रमने-वाली तृष्णाओं का अत हो जाता है।

●

९७ अनात्मामें आत्मा है, ऐसा माननेवाले और नामरूप के बधन में पडे हुए इन मूढ मनुष्यों की ओर तो देखो, वे यह समझते हे कि 'यही सत्य है'।

९८. वे जिस-जिस प्रकार की कल्पना करते है, उससे वह वस्तु भिन्न प्रकार की होती है और उनकी कल्पना झूठी ठहरती है; क्योंकि जो क्षणभगुर होती वह तो नश्वर है ही।

९९ पर आर्य लोग मानते है कि निर्वाण अविनश्वर है और वही सत्य है, और वे सत्य-ज्ञान के बलपर तृष्णारहित होकर निर्वाण-लाभ करते हैं।

●

१०० जिस प्रकार साप के फन से हम अपना पैर दूर रखते हैं, उसी प्रकार जो कामोपभोग से दूर रहता है वह स्मृतिमान् पुरुष इस विष-भरी तृष्णा का त्याग करके निर्वाण-पथ की ओर अग्रसर होता है।

१०१. वासना हो जिसका उद्देश्य हो, और संसारी सुखों के बंधन मे जो पड़ा हुआ हो, उसे छुड़ाना कठिन है; क्योंकि जो आगे या पीछे की आशा रखता है और अतीत या वर्तमान काल के कामोपभोग में लुब्ध रहता है, उसे कौन छुडा सकता है?

१०२ सोने-चादी के लाखों-करोड़ों सिक्कों को मै श्रेष्ठ धन नहीं

कहता । उसमें तो भय-ही-भय है—राजा का, अग्नि का, जल का, चोर का, लुटेरे का और अपने सगे-संबंधियोतक का भय है ।

●

१०३. श्रेष्ठ और अचचल तो मै इन सात धनो को मानता हूं–श्रद्धा, शील, लज्जा, लोक-भय, श्रुत, त्याग और प्रज्ञा । इस सप्तविध धन को कौन लूट सकता है और कौन छीन सकता है ?

●

१०४ लोभ, द्वेष और मोह ये पाप के मूल हैं; अलोभ अद्वेष और अमोह ये पुण्य के मूल हैं।

●

१०५ ये जो चद्र और सूर्य आकाश-मडल मे प्रकाशित हो रहे हैं और ब्राह्मण जिन्हे नित्य स्तोत्रों के गान से रिझाते और पूजते हैं, उन चद्र-सूर्य की ओर जाने का मार्ग क्या ये ब्राह्मण बतला सकेंगे ?

जिन चंद्र-सूर्य को वे ब्राह्मण प्रत्यक्ष देख सकते हैं उनतक पहुचने का मार्ग जब वे न जान ही सकते हैं, न बतला ही सकते हैं, तो उस ब्रह्म-सायुज्यता के मार्ग का वे क्या उपदेश करेंगे, जिसे न उन्होंने ही कभी देखा है और न उनके आचार्यों ने ही ? यदि ब्रह्मसायुज्यता के मार्ग का वे उपदेश करते हैं तो यह एक विचित्र ही बात है !

●

१०६ जो स्मृतिमान् मनुष्य अपने भोजन की मात्रा जानता है उसे अजीर्ण की तकलीफ नही होती । वह आयु का पालन करते-करते बहुत वर्षों के बाद वृद्ध होता है ।

●

१०७. कोई-कोई स्त्री तो पुरुष से भी श्रेष्ठ निकलती है । यदि वह बुद्धिमती, सुशील और बडों का आदर करनेवाली तथा पतिव्रता हो तो उसे कौन दोष दे सकता है ? उसके गर्भ से जो पुत्र जन्म लेता है वह

शूर-वीर होता है। ऐसी सद्भाग्यवती स्त्री के गर्भ से जन्म लेनेवाला पुत्र साम्राज्य चलाने की पात्रता रखता है।

●

१०८. कृपण के धन की कैसी बुरी गति होती है ? कृपण मनुष्य से उसके जीवन-काल मे किसीको सुख नही पहुचता, उसका इकट्ठा किया हुआ सारा धन अत मे राजा के खजाने मे जाता है, या चोर लूट लेते हैं, अथवा उसके शत्रु ही उसे तिडी-बिड़ी कर देते है।

कृपण के धन की वैसी ही गति होती है, जैसी जगल के उस तालाब की जिसका पानी किसीके काम नही आता, और वह वही-का-वही सूख जाता है।

●

१०६. जरा और मरण तो भारी-भारी पर्वतो से भी भयकर हैं। हाथी, घोडा, रथ और पैदल सैनिको की चतुरगिणी सेना से कहा जरा और मृत्यु की पराजय हो सकती है ? जरा और मृत्यु के घर यह भेदभाव नही कि ब्राह्मण है और यह चाडाल

●

११०. सदाचार-रत मनुष्य इस लोक मे प्रशसा पाता है, और परलोक मे सद्गति।

●

१११. अपने हाथ से कोई अपराध होगया हो तो उसे स्वीकार करना और भविष्य मे फिर कभी वह अपराध न करना, वह आर्य गृहस्थ का कर्तव्य है।

●

११२. धर्म को जानकर जो मनुष्य वृद्धजनो का आदर-सत्कार करते हैं, उनके लिए इस लोक मे प्रशसा है और परलोक मे सुगति।

●

११३. भिक्षुओ। मै तुम्हारी सेवा न करूगा तो कौन करेगा ? यहा तुम्हारी माता नहीं, पिता नहीं, जो तुम्हारी सेवा-[illegible] करते। तुम एक-

दूसरे की सेवा न करोगे, तो फिर कौन करेगा ? जो रोगी की सेवा करता है वह मेरी ही सेवा करता है।

●

११४ लोभ के फंदे मे फसा हुआ मनुष्य हिसा भी करता है, चोरी भी करता है, परस्त्री-गमन भी करता है, झूठ भी बोलता है, और दूसरो को भी वैसा ही करने के लिए प्रेरित करता है।

●

११५. तुम खुद अपनी आख से देखो कि यह धर्म अकुशल है, अतः त्याज्य है; इसे हम ग्रहण करेंगे तो हमारा अहित ही होगा। अकुशल धर्म का त्याग और कुशल धर्म का ग्रहण, दोनो तुम अपनी प्रज्ञा से करो--श्रुत से या मत-परम्परा से नहीं, प्रामाण्य शास्त्रो की अनुकूलता से या तर्क के कारण नही, न्याय के हेतु से या अपने चिरचितत मत के अनुकूल होने से नहीं और वक्ता के आकार अथवा उसके भव्य रूप से प्रभावित होकर भी नही।

●

११६. मुक्त पुरुष सदा सुख की नींद सोता है! रागादि से रहित नितान्त अनासक्त और निर्भय पुरुप आन्तरिक शाति मे विहार करता हुआ सदैव सुख की नीद सोता है।

●

११७. कटु वाक्य को सुनकर हमे उसे मन मे न लाना चाहिए।

११८ हानि-लाभ को न देखकर सौ वर्ष जीने की अपेक्षा हानि-लाभ को देखते हुए एक दिन का जीना अच्छा है।

११६. जो परवश है वह सब दुःख है। सुख तो एक स्ववशता में ही है।

१२० मूर्ख तबतक नहीं समझता जबतक कि वह पाप में पचता नहीं। पाप में जब वह पचने लगता है, तभी उसकी समझ में आता है कि अरे यह तो पाप-कर्म है।

१२१ हत्या का फल हत्या है, निन्दा का फल निन्दा है और क्रोध का फल क्रोध। जो जैसा करता है, वैसा ही फल उसे मिलता है।

●

१२२ रंग या रूप से मनुष्य सुज्ञेय नहीं होता। किसीको देखते ही उसपर विश्वास न कर लेना चाहिए। रूप और रंग से कितने ही मनुष्य सयमी से मालूम होते हैं।

●

१२३ ऐसे बने हुए मनुष्य मिट्टी के नकली कुंडल की तरह या सोने से मढ़े हुए तावे के टुकड़े की तरह होते हैं। ऊपर से सुन्दर किन्तु भीतर से वे महान् अशुद्ध होते हैं।

●

१२४ तुझे इस बात का अभ्यास करना चाहिए कि मेरे चित्त में विकार नहीं आने पायेगा, मुंह से दुर्वचन नहीं निकालूंगा, और द्वेष-रहित हो मैत्रीभाव से इस संसार मे विचरण करूंगा।

●

१२५. तुम्हारे लिए दो ही कर्त्तव्य हैं—एक तो धर्म-वचन का मनन और दूसरा आर्य तूष्णीभाव, अर्थात् उत्तम मौन।

●

१२६ उनके लिए अमृत का द्वार बन्द है, जो कानों के होते हुए भी श्रद्धा को छोड़ देते हैं।

१२७. जिन जीवों के समस्त आस्रव अर्थात् मल नष्ट हो जाते है, उन्हीको 'जिन' कहते हैं।

●

१२८. परम लाभ आरोग्य है और परमसुख निर्वाण।

●

१२९ सत्य-प्राप्ति का उपकारी धर्म प्रयत्न है। मनुष्य प्रयत्न न करे

तो फिर सत्य की प्राप्ति कहाँ से हो ? और, प्रयत्न का उपकारी धर्म उद्योग है। बिना उद्योग के मनुष्य प्रयत्न नहीं कर सकता।

●

१३०. उच्च कुल में जन्म लेने से लोभ थोड़ा ही नष्ट हो जाता है। उच्च कुल में जन्म लेने से न द्वेष ही नष्ट होता है, न मोह ही।

१३१ उच्च कुल में भले ही जन्म न लिया हो, किन्तु यदि मनुष्य धर्ममार्ग पर आरूढ़ होकर धर्म का ठीक-ठीक आचरण करता है तो वह प्रशसनीय है, पूज्य है।

●

१३२. जो मनुष्य अपनी उच्चकुलीनता का अभिमान करता है और दूसरो को नीची निगाह से देखता है, वह प्रव्रज्या ले लेने पर भी 'असत्पुरुष' ही कहलायेगा।

१३३. यह वृक्षो की छाया है, यह शून्य गृह है। प्रमाद मत करो, ध्यान करो।

●

१३४. चाहे गृहस्थ हो चाहे संन्यासी, यदि वह मिथ्या प्रतिज्ञावाला है, तो वह मिथ्या प्रतिपत्ति (मिथ्याचरण) के कारण कुशल धर्म का आराधक नहीं हो सकता है।

●

१३५ उलीचो, उलीचो, इस नाव को उलीचो; उलीचने से तुम्हारी यह नाव हल्की हो जायगी और तर्म। जल्दी-जल्दी चलेगी। राग और द्वेष का छेदन करके ही तुम निर्वाण-पद पा सकोगे।

●

१३६ काट डालो वासना के इस बीहड़ वन को, एक भी वृक्ष न रहने पाये। यह महाभयंकर वन है। जब वन और उसमें उगनेवाली झाड़ियो को काट डालोगे, तभी तुम निर्वाणपद पाओगे।

●

१३७. आत्मस्नेह को इस तरह काटकर फेंक दे, जिस तरह लोग शरद् ऋतु के कुमुद को हाथ से तोड़ लेते है। शांति के मार्ग का आश्रय ले—यह बुद्ध द्वारा उपदिष्ट मार्ग है।

●

१३८ बुद्ध के निर्दिष्ट मार्ग पर वही चल सकता है, जो मन, वचन और काया को पापों से बचाता है।

●

१३९ यह ब्रह्मचर्य न तो आदर-सत्कार प्राप्त करने के लिए है, न शील-संपत्ति प्राप्त करने के लिए—और न समाधि-संपत्ति या प्रज्ञा प्राप्त करने के लिए है। यह ब्रह्मचर्य तो आत्यंतिक चित्त-विमुक्ति अर्थात् निर्वाण-पद प्राप्त करने के लिए है। आत्यंतिक चित्त-विमुक्ति ही ब्रह्मचर्य का सार है, और यही ब्रह्मचर्य-व्रत का पर्यवसान भी है।

●

१४० जिस श्रद्धालु गृहस्थ मे सत्य, धर्म, धृति और त्याग, ये चार गुण हैं, वह इस लोक से परलोक में जाकर शोक नहीं करता।

●

१४१. वही बात बोलनी चाहिए, जिससे अपनेको सन्ताप न हो, और जिससे किसीको दुःख न पहुंचे। यही सुभाषित वाक्य है।

●

१४२ वही प्रिय बात बोलनी चाहिए, जो आनन्ददायक हो, और ऐसा न हो कि दूसरे के लिए प्रिय बात बोलने से पाप लगे।

१४३ सत्य अमृतवाणी है, यही सनातन नियम है।

१४४. सन्तों ने कहा कि सुभाषित वाक्य ही उत्तम है। धर्म की बात कहना, अधर्म की न कहना यह दूसरा सुभाषण है। प्रिय बोलना, अप्रिय न बोलना, यह तीसरा सुभाषण है। सत्य बोलना, असत्य न बोलना यह चौथा सुभाषण है।

●

१४५. भिक्षुओ ! अब तुम लोग जाओ, घूमो, बहुजन के हित के लिए; बहुजन के सुख के लिए, देवताओं और मनुष्यों के कल्याण के लिए घूमो। कोई दो भिक्षु एक तरफ न जाना। तुम लोग उस धर्म का उपदेश करो, जो आदि में कल्याणकारी है, मध्य में कल्याणकारी है और अन्त में कल्याणकारी है।

●

१. ध. प. (पुप्फवग्गो) २—४ ध. प. (बालवग्गो) ५—६ ध. प. (पंडितवग्गो) ७—९ ध. प. (सहस्सवग्गो) १०— ११ ध. प. (पापवग्गो) १२—१३ ध. प. (अत्तवग्गो) १४—१६ ध. प. (लोकवग्गो) १७ ध. प. (बुद्धवग्गो) १८— २३ ध. प. (सुखवग्गो) २४—२८ ध. प. (कोधवग्गो) २९—३५ ध. प. (मलवग्गो) ३६—४७ ध. प. (धम्मट्ठ-वग्गो) ४८—५३ (पकिण्णक वग्गो) ५४—५८ ध प. (निरयवग्गो) ५९—६२ ध. प. (पुप्फवग्गो) ६३—६५ ध प. (यमकवग्गो) ६६—६८ ध. प. (बालवग्गो) ६९ ध. प. (अर्हतवग्गो) ७०. ध. प. (सहस्स-वग्गो) ७१. ध. प. (पापवग्गो) ७२. ध. प. (नागवग्गो) ७३—८०. ध. प. (भिक्खुवग्गो) ८१ सु. नि. (धम्मिक सुत्त) ८२—८३ सु. नि. (निदानवग्गो) (भिक्खु संयुग) ८४—८५, सु. नि. (खग्गविसाण सुत्त) ८६—८७. सु. नि (नावा सुत्त) ८८—९१. सु. नि. (कोकालिक सुत्त) ९२—९३. सु. नि. (नालक सुत्त) ९३—९५. सु. नि. (द्वयतानुपस्सना-सुत्त) १००. सु. नि. (काम सुत्त) १०१. सु. नि. (गुहट्ठक सुत्त) १०२.

सु नि (कुद्दुक सुत्त) १०३. अं. नि. (धन सुत्त) १०४. अं. नि. (कालाम सुत्त) १०५. दी. नि. (तेविज्ज सुत्त) १०६—११०. बु. ली. सा. सं. (कोमल सयुत्त) १११. डी. नि. (सामञ्ञफल सुत्त) ११२. बु. च. (अनाथपिंडक दीक्षा) ११३. बु. च. (पृष्ठ ३३८) ११४—११५. अं. नि. (३. ७. ५.) ११६. अ. नि. (३. ४. ५.) ११८ ध. प. ११९. बु. च. (विसाख सुत्त) १२०— १२१. बु. च. (सगाय सुत्त) १२२—१२३. अं. नि. (३. २. १.) १२४. म. नि. (ककचूपमसुत्तंत) १२५—१२७. म. नि. (पासरासि सुत्तंत) १२८. म. नि. (मागंदिय सुत्तंत) १२९. म. नि. (चंकी सुत्त) १३०—१३२. म. नि. (सधुरिस धम्म सुत्तंत) १३३. स. नि. (आनंज सप्पाव सुत्तंत) १३४. स. नि. (सुभ सुत्तंत) १३५. ध. प. (भिक्खुवग्गो) १३६—१३८. ध. प. (मग्गवग्गो) १३९. म. नि. (महासारोपम सुत्त) १४०. सु. नि. (आलवक सुत्त) १४१—१४४ सु. नि. (सुभासित सुत्त) १४५. अं. नि (४१. ४.)

कोश

अकुशल	=	पाप ; दुष्कृत्य
अकप्य	=	स्थिर
अनागामी	=	कामवासना और क्रोध इन दो संयोजनों का सम्पूर्णतया उच्छेद करने वाला श्रमण
अनादान	=	अपरिग्रह
अनुत्तर	=	जिससे उत्तम कोई दूसरा न हो
अनुशय	=	मल
अभिज्ञा	=	दिव्य ज्ञान
असपत्न	=	जिसका कोई प्रतिस्पर्धी अथवा शत्रु न हो
असमाति	=	समाधिरहित; अशांत
अष्टांगिकमार्ग	=	आठ अंगोंवाला मार्ग ; आठ अंग ये हैं—सम्यक् दृष्टि, सम्यक् संकल्प, सम्यक् वचन, सम्यक् कर्मांत, सम्यक् आजीव, सम्यक् व्यायाम, सम्यक् स्मृति और सम्यक् समाधि। इसे 'मध्यमा प्रतिपदा' भी कहते हैं
आयतन	=	आश्रय; बौद्ध-दर्शन में आयतन दो प्रकार के हैं—आध्यात्मिक या आंतरिक और बाह्य। चक्षु, श्रोत्र, घ्राण, जिह्वा, काय और मन, ये आध्यात्मिक आयतन हैं। और, रूप, रस, शब्द गंध, स्पर्श और धर्म ये बाह्य आयतन हैं।
आर्यसत्य	=	उत्तम सत्य जो चार प्रकार का है—दुःख, दुःख-समुदाय, दुःखनिरोध और दुःखनिरोध का मार्ग
आस्रव	=	मल ; प्रवाह

आर्हत = अर्हत का धम

उपेक्षा = मध्यस्थता, तीसरा बोध्यग

उपोसथ = व्रत का दिन

ओघ = भवसागर ; ससार-प्रवाह

अंत = अतिसीमा

ऋद्धिपाद = असाधारण क्षमता या दिव्यशक्ति

कषाय = मल

कुशल = पुण्य ; सत्कर्म

कोश = पुनर्जन्म देनेवाला कर्म

छद = राग

दान्त = जिसने इंद्रियो का सम्पूर्णतया दमन कर लिया है

दौर्मनस्य = दुर्मनता ; मानसिक दुःख

परिदेव = रोना-विलपना

पंचोपादन = पाच अभिनिवेश, जो ये हैं—रूप, वेदना, सज्ञा, संस्कार और विज्ञान

प्रतिपत्ति = मार्ग

प्रधान = प्रयत्न, निर्वाणसम्बन्धी प्रयत्न

प्रविचय = संग्रह, अन्वेषण

प्रव्रज्या = संन्यास

प्रश्रब्धि = शाति ; एक बोध्यंग

बोध्यग = निर्वाण-ज्ञान के अंग जो सात हैं—स्मृति, धर्म-विचय, वीर्य, प्रीति, प्रश्रब्धि, समाधि और उपेक्षा

मार = शैतान

रति = सुखोपयोगो के पदार्थों मे असक्ति

वितर्क = मिथ्या सकल्प

विज्ञान = चित्त की धारा

वीर्य = उद्योग, मनोबल